M.T.V. Acharya

किसी समय पवित्र पण्डरीपुर में कमलाकर नाम का एक ब्राह्मण रहा करता था। वह सभी शास्त्रों में पारङ्गत था। उसकी स्त्री सुमति भी बड़ी पतिव्रता और सुशीला थी। इन दम्पति का एक ही लड़का था जिसका नाम पद्माकर था।

कमलाकर बहुत गरीब था। भिक्षाटन करके अपनी जीविका चलाया करता था। मगर भगवान में उसका विश्वास अचल था और उसकी भक्ति दृढ़ थी।

एक दिन कमलाकर भिक्षा के लिए जा रहा था कि राह में उसे तुकाराम, नामदेव आदि सुप्रसिद्ध भक्तों का दल सङ्कीर्तन करते हुए दिखाई दिया।

उन्हें देख कर कमलाकर को बहुत खुशी हुई। उसने कहा-"महात्मा-गण ! आज कैसा सुदिन है ! यह तो मेरे पूर्व जन्म का पुण्य फल है कि आज आप सब के दर्शन एक साथ हो गए। इस दीन पर कृपा करके चलिए और हमारे दरिद्र गृह को पावन कीजिए।" उसने भक्ति गदगद होकर उन भक्तों से कहा।

तब उन भक्तों ने कहा-"भैया कमलाकर ! हमें तुम्हारे वचन सुनकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है। लेकिन तुम्हारी हालत हम से छिपी नहीं है। तुम स्वयं ही भिक्षाटन करके जीविका चलाते हो। हम सबको कैसे खिलाओगे ? तुम बेकार परेशान न होओ ! तुम्हारा प्रेम ही हमारे लिए काफी है।"

लेकिन उनकी बातें सुन कर कमलाकर को बहुत खेद हुआ। उसने कहा -"आप यह क्या कहते हैं? है तो यह सत्य कि मैं बड़ा ही दरिद्र हूँ और भीख माँग कर अपने परिवार का पेट पालता हूँ। लेकिन मेरी माता देवी रुक्मिणी और मेरे पिता भगवान

कृष्ण बड़े धनवान हैं। उनकी कृपा से आप को किसी चीज की कमी न होने पाएगी। इसलिए आप कृपा करके मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लीजिए और मेहमान बन कर मेरे घर चलिए।" कमलाकर हाथ जोड़ कर बड़े ही दीन-भाव से बोला।

भगवान कृष्ण में कमलाकर का ऐसा भरोसा देख कर भक्त लोग बहुत प्रसन्न हुए। बोले-"अच्छा मैया ! अब हमें कोई उज्र नहीं रहा। हम जाकर चन्द्रभागा नदी में स्नान-पूजा कर आते हैं। तुम भी सीधे घर जाकर अपनी तैयारियों में लगे रहो।" भक्त लोगों ने कहा और नदी की ओर चले।

कमलाकर प्रसन्न चित्त से घर लौट आया और जाकर पत्नी को यह खबर सुना दी। सुमति बहुत खुश हुई। वह पड़ोसिनों के घर जाकर चावल दाल माँग ले आई और रसोई में लग गई।

रसोई पूरी होने के पहले ही लकड़ियाँ चुक गईं। तब सुमति ने बेटे को बुला कर कहा-"बेटा! लकड़ियाँ चुक गई। उधर कोने में कण्डे पड़े हैं। जाकर जरा ला दे बेटा !"

पद्माकर कण्डे लाने के लिए दौड़ा गया। लेकिन वहाँ एक काले साँप ने, जो न जाने, कितने दिन से वहाँ आसन जमाए बैठा था, उसे काट खा लिया। बेचारा एक बार "माँ!" कह कर जमीन पर गिर पड़ा। उसने तड़प तड़प कर जान छोड़ दी।

उसकी पुकार सुन कर माता दौड़ी आई। यह दृश्य देख कर वह पथरा गई। बच्चे का बदन छूकर देखा तो मालम हुआ कि जान नहीं है। बेचारी बहुत बिह्वल हो गई।

लेकिन यह शोक करने का समय नहीं था। उधर मेहमान लोग आने वाले थे। इसलिए उसने छाती पर पत्थर घर कर, बेटे को वहीं लिटा दिया और जाकर चुपचाप अपने काम में लग गई।

थोड़ी देर में रसोई बन गई। भक्त गण स्नान करके भगवान का नाम लेते हुए कमलाकर के घर आए।

कमलाकर ने उनका प्रेम-पूर्वक स्वागत किया और पत्तल बिछा कर उनसे आसनों पर विराजने की प्रार्थना की। आसनों पर बैठते ही भक्तों ने पूछा-"कमलाकर ! तुम्हारा लड़का नहीं दिखाई देता। कहाँ गया वह ! उसे भी बुलाओ!" लेकिन कमलाकर चुप रह गया। तब भक्त लोगों ने ध्यान लगाया और अपनी दिव्य-दृष्टि से सारा हाल जान लिया।

"लड़के को बुलाओ ! वह भी हमारे साथ खाने बैठेगा !" नामदेव ने कहा।

कमलाकर की जान मुश्किल में पड़ गई। अगर इन्हें मालूम हो गया कि पद्माकर मर गया है तो शायद ये लोग आसन से उठ कर चल देंगे। अपुत्र के घर कौन भोजन करता है। इसलिए उसने कहा-"भाइयों! थोड़ी देर पहले ही खा लिया था उसने। आप लोग उसकी चिन्ता न कीजिए।" इस तरह उसने बहाना बनाया। लेकिन नामदेव ने, जिन

से कोई बात छिपी नहीं थी, हठ किया-"नहीं, नहीं, उसे अपने साथ बिठाए बिना हम कौर नहीं उठाएँगे !" अब तो कमलाकर धर्म-सङ्कट में पड़ गया। कोई उपाय न सूझा। आखिर वह करुणामय पण्डरीनाथ की प्रार्थना करने लगा। भगवान ने ध्यान में प्रत्यक्ष होकर पूछा-"प्यारे कमलाकर ! क्या चाहते हो ?"

"देव ! मेरे घर मेहमान आए हैं। वे चाहते हैं कि मेरा बेटा भी उनके साथ खाने बैठे। लेकिन मेरा बेटा थोड़ी देर पहले ही मर गया है। इसलिए देव। मेरे लड़के को थोड़ी देर के लिए जिला दो जिस से वह भी भक्तों के साथ खाने बैठे और कार्य सफल हो जाए। इस के अलावा में और कुछ नहीं चाहता!" कमलाकर बोला।

भगवान ने कहा-"अच्छा जाओ, तुम्हारी इच्छा पूरी हो जाएगी।" और अन्तर्धान हो गए। तुरन्त उधर पद्माकर चिर-निद्रा से जाग उठा और "माँ ! बड़ी प्यास लगी है।" कहते हुए सीधे उस जगह चला आया, जहाँ भक्तगण भोजन करने बैठे हुए थे।

माता सुमति ने दौड़ कर आनन्द से उसे गले लगा लिया और भक्तों से कहने लगी-"महात्मा ! आप ही लोगों की कृपा से मेरा लड़का वापस मिल गया। आप लोग भगवान के समान हैं। नहीं तो मरे हुए को और कौन जिला सकता है!" यों उसने अनेक प्रकार से भक्तों की प्रशंसा की और अपनी कृतज्ञता जताई।

पद्माकर को अपने साथ बिठा कर भक्तों ने हर्ष के साथ भोजन किया। अन्त में उन्होंने कमलाकर को तारक मन्त्र का उपदेश दिया और उसकी अविचल भक्ति की बहुत प्रशंसा करके बड़े प्रेम से विदा ली।

कमलाकर की अटल भक्ति का ही प्रभाव था कि उसका मृत पुत्र भी पुनर्जीवित हो गया।

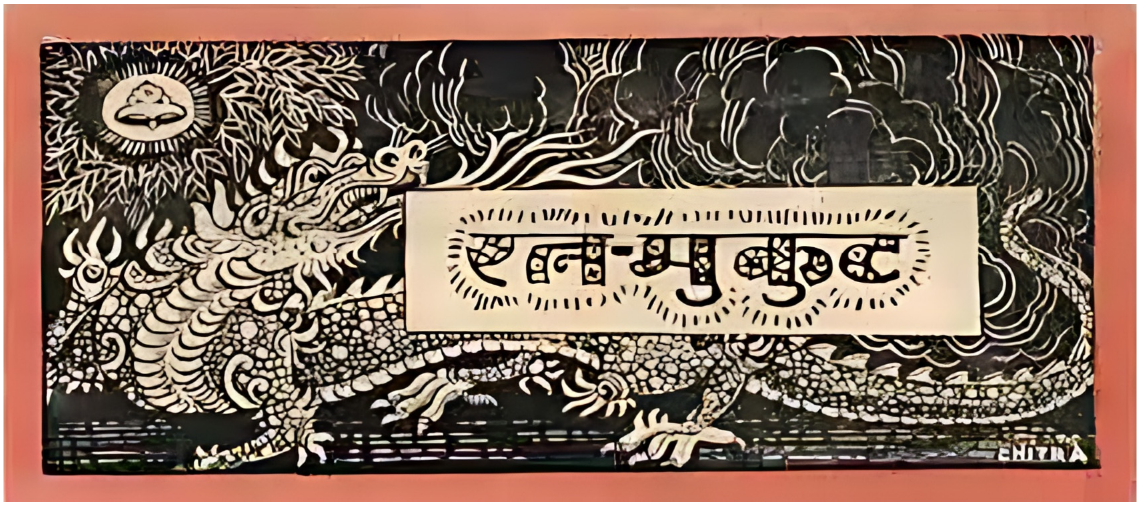

उसी समय एक नौकर हाँफते हुए दौड़ा आया। "हुजूर ! किरातराज और अर्धपाल की लाश मिल गई।" उसने कहा।

राजगुरु ने एक सुख की सांस ली, जैसे कोई भारी बोझ उसके सिर से हट गया हो। "अच्छा, अब खोज-ढूँढ कर उस छोकरे का पता लगाना है।" उसने कहा। इतने में सिपाही युद्ध क्षेत्र से किरात-राज और अर्धपाल की लाश ढोकर ले आए।

इधर बेचारे मन्दपाल के मन में बहुत खेद हो रहा था। लेकिन वह कुछ नहीं कह सकता था। पिता के मरने की खबर सुन कर उसको बहुत दुख हुआ, यह तो राजगुरु भी भाँप गया। वह सोचने लगा-"यह है तो स्वाभाविक; मगर आगे चल कर यही सङ्कट का मूल बनेगा।"

यह बुरी खबर सुन कर जेल में हर्षपाल बिह्वल होने लगा और अर्धपाल की पत्नी बेहोश हो गई।

इन दोनों के मरने की खबर सुन कर सामन्तों में अगर किसी को दुख हुआ तो वह अमरसिंह को। बेचारे की बिटिया कैद में थी। नन्हा नाती भी लापता हो गया था। दामाद मारा गया था; विपदाएँ सभी एक साथ टूट पड़ीं थीं।

ऐसी हालत में राज तिलक के उत्सव में भाग लेने की उसकी तनिक भी इच्छा न थी। लेकिन मजबूर था। नहीं तो अन्य सामन्तों

को उस पर जरूर शक हो जाता। उस बेचारे की काया ही उत्सव में भाग ले रही थी। मन वहाँ नहीं था।

राजगुरु ने जल्दी-जल्दी राज तिलक का सारा प्रबन्ध कर लिया था। बड़ी धूम-धाम मची हुई थी। ऐसे समय मगध से एक दूत अमरसिंह के पिता के देहान्त की खबर ले आया। बेचारा अमरसिंह और भी व्याकुल हो गया। वह राजगुरु और मन्दपाल को यह समाचार सुना कर, इजाजत लेकर, उसी समय अपने राज्य को लौट गया। लेकिन उसका सारा मन अपने नाती पर लगा हुआ था।

यथा समय मन्दपाल का राज तिलक हो गया। धीरे धीरे सब लोग अपने अपने घर लौट गए।

इस उत्सव में जनता ने भाग तो लिया; लेकिन राजी खुशी नहीं। भल्लाण-राज के निवासियों के मन में बड़ी खलबली मची हुई थी। राजा हर्षपाल की हार क्योंकर हुई, इस में राजगुरु और मन्दपाल के कुचक्रों का कहाँ तक हाथ था, यह सबको अच्छी तरह मालूम हो गया था। हर्षपाल और अर्धपाल की पत्नी के कैद होने, अर्धपाल और किरातराज के मारे जाने और भोले चित्र-भानु के लापता हो जाने से जनता में असन्तोष फैलने लगा था।

"हमारे राजा को छोड़ दो! हमारी रानी को छोड़ दो! हर्षपाल को फिर से राजा बना दो !" आदि नारे जगह जगह लगने लगे थे।

मन्दपाल से कुछ भी न हो सका। हाँ, राजगुरु ने इस आन्दोलन को दबा देने की पूरी कोशिश की। इतना ही नहीं, उसने जनता का असन्तोष दूर करने के ख्याल से यह घोषणा भी कर दी कि लोगों की सारी शिकायतों पर पूरा ध्यान दिया जाएगा।

लेकिन इसका भी कुछ नतीजा न निकला। तब राजगुरु को बहुत क्रोध आ गया और वह जनता को सताने लगा। लेकिन यह भी कारगर साबित न हुआ।

सब राजगुरु को मालूम हो गया कि अत्याचार करने से जनता नहीं दबेगी। आखिर खूब सोचने-विचारने के बाद उसने एक उपाय ढूँढ निकाला। उसने सोचा-"सात बरस तक सब तरह के कर उठा दूँगा तो जरूर राज में आनन्द छा जाएगा और लोगों का सारा असन्तोष दूर हो जाएगा।" लेकिन सारे कर उठा देने से राज का काम-काज कैसे चलेगा ? इसलिए राजगुरु ने खूब सोच-विचार कर सामन्तों को इस प्रकार एक सूचना भेजी-"आप लोगों ने अकारण जो लड़ाई छेड़ दी, उस में भल्लाण के निवासियों का बहुत नुकसान हुआ। खेती-बारी चौपट हो गयी। घर-बार उजड़ गए। कितने ही लोगों की रोजी चली गई। आज हमारी प्रजा बहुत मुश्किल में है और प्रजा की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है। इसलिए हम ने खूब सोच-विचार कर यह निश्चय किया है कि भल्लाण में सात बरस तक सब तरह का कर

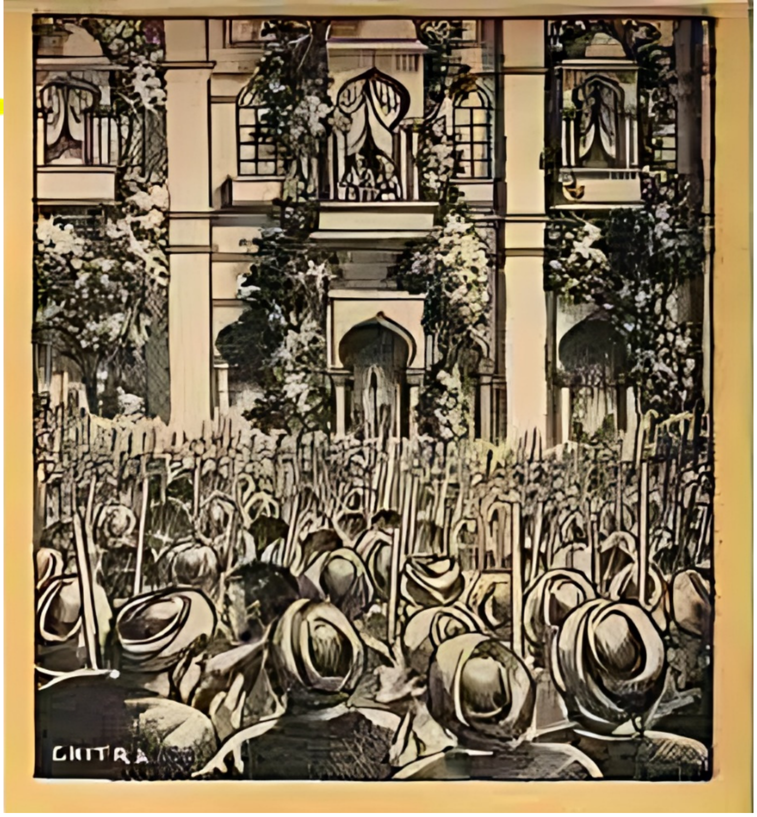

उठा दिया जाए। इस से प्रजा की आर्थिक दुर्दशा कुछ हद तक दूर हो जाएगी। इस निश्चय को कार्य रूप देने के लिए आप सब की सहायता आवश्यक है। इस युद्ध के कारण हमारी भी बड़ी आर्थिक क्षति हुई है। इसलिए हम चाहते हैं कि आप सभी इस साल से दुगुना कर चुकाएँ !" उस सूचना में लिखा था।

सूचना पाते ही सामन्त सभी गुर्जर राज के नेतृत्व में एक जगह इकठ्ठा हो गए। वे सब अब अपनी करनी पर पछता रहे थे। बड़ी देर तक चर्चा हुई। लेकिन कोई नतीजा न निकला। आखिर उन सब ने अमरसिंह से प्रार्थना की कि आप हमें इस सङ्कट से

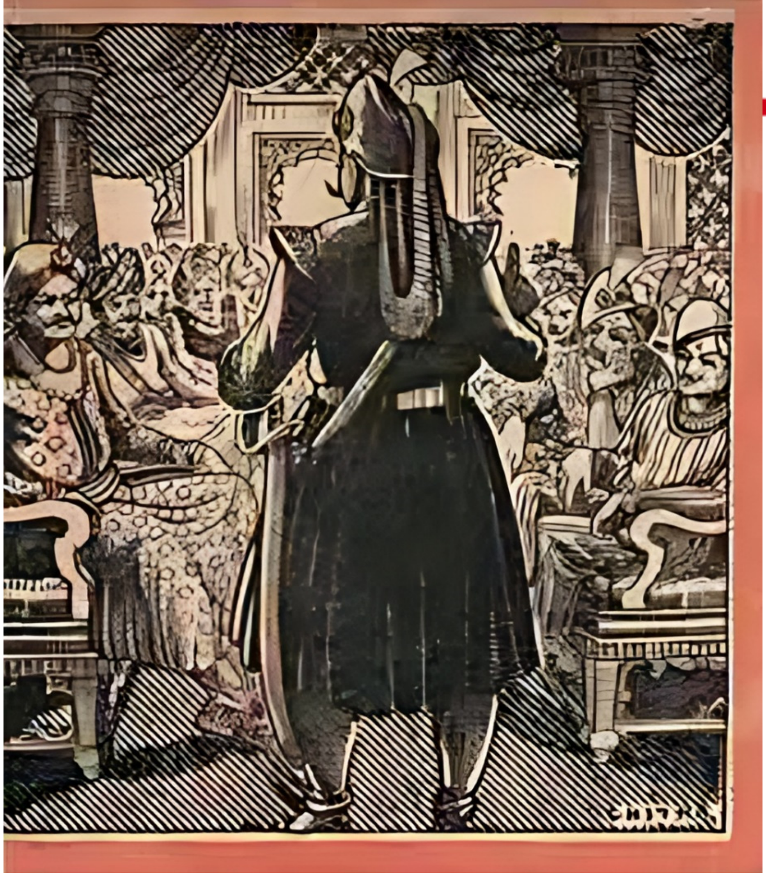

बचाएँ!" तब अनुभवी अमरसिंह ने सोच विचार कर कहा-"यह समय ही ऐसा है कि उतावली करने से काम नहीं चलेगा। हम लोग यहाँ उतावली करेंगे तो वहाँ हर्षपाल और अर्धपाल की पत्नी की जान पर आ बनेगी। क्योंकि राजगुरु बड़ा जालिम है। ऐसा कोई भी कुकर्म नहीं जिसे करने में वह हिचकिचाए। इसलिए हमें छुपे छुपे कार्रवाई करनी होगी। पहले खोज-ढूँढ कर अर्धपाल के नन्हे बच्चे का पता लगाना होगा और उसकी रक्षा करनी होगी। पीछे जो करना होगा करेंगे।" उपस्थित सामन्तों को भी अमरसिंह की सलाह बहुत पसन्द आ गई। उन लोगों ने तुरन्त अपने अपने राज्यों में चारों ओर गुप्तचर भेज कर अर्धपाल के पुत्र की खोज शुरू कर दी।

अमरसिंह की सलाह के अनुसार सामन्त लोगों ने राजगुरु की सूचना का यह उत्तर लिख भेजा-"आज तक आपने हमें जो कुछ सिखाया पढ़ाया, वही हमने किया। लड़ाई में हम लोगों का भी कुछ कम नुकसान नहीं हुआ। आखिर वह लड़ाई भी हमने छेड़ी थी आप ही के कहने से। आप ही ने हमें सिखाया था कि रत्न-मुकुट-हीन राजा को कर चुकाने की कोई जरूरत नहीं। हमने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि आप इतने थोड़े समय में इस तरह बदल जाएँगे और लड़ाई के मैदान से लौटते ही अपने वादे भूल कर, हमें इस तरह दुगुना कर चुकाने का आदेश देंगे। हमारा विश्वास था कि भल्लाण पर कब्जा होते ही आप अपने सारे वादे पूरा करेंगे और हमें स्वतन्त्र बना देंगे। हमने कभी नहीं सोचा था कि आप हमारी भलाई का बदला इस तरह चुकाएँगे। आपने हमारी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। सारे मनसूबे मिट्टी में मिला दिए। हमें विश्वास नहीं रहा कि

अब आप हमारी बिनतियों पर तनिक भी च्यान देंगे। इसलिए हम और ज्यादा लिख कर रोशनाई खराब करना नहीं चाहते।"

सामन्तों का यह जवाब देख कर राज गुरु गुम रह गया। उसे न सूझा कि क्या किया जाय। आखिर उसने सोचा-"यह चाल नहीं चली। अब कोई दूसरा ही उपाय सोचना पड़ेगा।"

इधर जनता में असन्तोष तो फैला ही हुआ था। उधर अब सामन्तगण भी उसके खिलाफ हो गए थे। ज्यादा दबाव डालने से वे लोग बगावत का झण्डा खड़ा कर देते और लड़ाई लाज़िमी हो जाती। हर्षपाल और अर्धपाल की पत्नी को छोड़े बिना जनता का भी असन्तोष दूर होने वाला नहीं था। इन दोनों को छोड़ देने पर बात ही बिगड़ जाती। इस तरह राजगुरु की साँप-छछुन्दर की सी हालत हो गई। ऐसी हालत में उसे एक अच्छा उपाय सूझ गया। लेकिन वह था ऐसा कि मन्दपाल कभी राजी नहीं होता।

इसलिए राजगुरु ने अपने बेटे को बुलाया और मन की बात उसे बता दी। वह तुरन्त अपने पिता की इच्छा पूरी करने के लिए तैयार हो गया।

इतना ही नहीं, उसने कहा-"अगर यही चाल चल गई तो मेरा चिरकाल का मनोरथ सफल हो जायगा। भल्लाण का सिंहासन हमारे अधिकार में आ जाएगा।"

ज्यों ही लड़के के मुँह से यह बात निकली त्यों ही राजगुरु का मन डवाडोल हो गया। संयोग देखिए कि उसी समय उसे चित्रभानु के मरने की झूठी खबर भी मिल गयी। बस, राजगुरु ने किसी न किसी तरह मन्दपाल को गद्दी से हटा कर अपने बेटे को उस पर बिठाने का निश्चय कर लिया। अब बाप-बेटे दोनों मिलकर मन्त्रणा करने और कुचक्र रचने लगे।

दूसरे ही दिन दोनों ने अपना इरादा पूरा करने का सारा प्रबन्ध कर लिया। "आप कुछ चिन्ता न कीजिए पिताजी! में सारा काम सम्हाल लूँगा।" राजगुरु के लड़के ने अपने पिता से कहा। बेटे की चतुरता और साहस देख कर राजगुरु को बहुत प्रसन्नता हुई। वह मन की मन हवाई महल बनाने और अपने लाड़ले लड़के को राजगद्दी पर बिठाने के स्वप्न देखने लगा।

अपने पिता की सलाह के अनुसार राज-गुरु के लड़के ने उसी रात कुछ विश्वास पात्र सेवकों को कारागार में, जिस में हर्षपाल और अर्धपाल की रानी आदि थे, आग लगाने की आज्ञा दे दी। उसने उन्हें स्वयं बता दिया कि किस किस जगह पहले आग लगा देनी होगी। इस बात की किसी के कान में भनक तक न पड़ने पाई। समय पर आग लगा दी गई। देखते-देखते लपटें धू-धू कर नाचने लगीं। इतने में राजगुरु के लड़के को जो वहीं खड़ा यह दृश्य देख कर आनन्दित हो रहा था, एक संशय हुआ। उसने सोचा-"कहीं हर्षपाल और अर्धपाल की पत्नी के कमरों में आग न लगी तो ?" ज्यों ही यह संशय उठा, वह बेचैन होकर जेल के अन्दर चला गया और जानने की कोशिश करने लगा कि उन कमरों में आग लगी कि नहीं। इतने में जलती हुई छत से एक शहतीर टूट कर गिरी और राजगुरु का कुल दीपक और लाड़ला लड़का उसके नीचे दब कर मर गया।

ज्यों ही जेल में आग लगने की खबर चारों ओर फैल गई त्यों ही सब लोग हड़बड़ा कर उठे और दौड़े आए। वे सभी पागलों की तरह चिल्लाने और चीखने लगे। जिन जिन लोगों के प्रिय बन्धु-गण उस कारागार में बन्दी थे उनके शोक का तो कोई ठिकाना ही न था।

लेकिन निर्दई अग्निदेव ने उनके हा-हा-कार को अनसुना कर दिया। वे चुपचाप अपना काम करते ही गए। लपटें उठ कर आसमान चूमने लगी और उस जगह दिन की सी रोशनी होने लगी।

कुछ साहसी व्यक्ति पानी भर लाए। और कुछ लोग अन्दर घुस गए और दरवाजे तोड़ कर अभागे बन्दियों को छुड़ाने की कोशिश करने लगे।

जब यह खबर किले में पहुँच गई तो मन्दपाल बहुत व्याकुल हो गया। "यह दुर्घटना है या किसी दुष्ट की करतूत ? जेल मैं आग कैसे लग गई ? न जाने, बेचारे हर्षपाल और अर्धपाल की पत्नी की क्या हालत हुई होगी ? लोग क्या कहेंगे ? शायद वे कहेंगे कि मैंने ही आग लगवा दी। इन दिनों ऐसी अफवाह फैलते ज्यादा देर नहीं लगती।" आदि बातें सोचते हुए ब्याकुल मन्दपाल कारागार की तरफ दौड़ा। लोगों के बहुत मना करने पर भी वह अन्दर घुस गया और पूछ-ताछ करने लगा कि आग कैसे लग गई। इतने में कुछ लोग हर्षपाल और अर्धपाल की पत्नी की लाश ढोकर सामने ले आए। यह देख कर सब लोग सन्न रह गए। उन दोनों के तड़प तड़प कर मर जाने की कल्पना करके लोगों के रोएँ खड़े होने लगे। ऐसी दुर्दशा न जाने, कितनों की हुई थी।

इतने में राजगुरु भी वहाँ आया। वह किसी को ढूँढते हुए अन्दर गया और चारों ओर घूमने लगा। बेचारे के होश ठिकाने नहीं थे। नज़रें पागलों की सी भटक रही थीं। इतने में उसकी निगाह अपने लड़के पर पड़ी, जो शहतीर के नीचे दब कर मरा पड़ा था। वह तुरन्त पछाड़ खा कर कालिख भरी जमीन पर गिर पड़ा। लोग भय से काँपने लगे।

इधर माता को छोड़ कर जाने के बाद बालक चित्रभानु को 'मित्रानन्द' नाम के तपस्वी के दर्शन हो गए थे। ये तरस्वी और कोई नहीं, वहीं थे जिन्होंने इस कहानी के के प्रारंभ में राजा हर्षपाल के लिए एक मन्त्रित फल भेजा था।

तपस्वी मित्रानन्द कुछ दिनों से उसी जङ्गल में, जिस में यह बालक भटक रहा या एक आश्रम बना कर रहने लगे थे। नदी किनारे जाते वक्त संयोगवश उनकी नजर चित्रभानु पर पड़ गई। उन्होंने उस बालक को देखते ही अपनी दिव्य-दृष्टि से सारा हाल जान लिया। "बेटा! मेरे साथ आओ !" कह कर वे उसे अपने साथ आश्रम को ले गए।

चित्रभानु उनके यहाँ पलने और अन्य चेलों की तरह शिक्षा-दीक्षा पाने लगा। वह निकला बड़ा तेज। कुछ ही दिनों में सब से आगे बढ़ गया। तपस्वी की भी उस पर बड़ी कृपा थी। वे उसे घुड़सवारी, अस्त्र-शस्त्र चलाना, तीर चलाना आदि क्षत्रियोचित विषय सिखा रहे थे और सब तरह से राज-कुल योग्य ही शिक्षा दे रहे थे।

इस तरह दस साल तक मित्रानन्द के आश्रम में रह कर, चित्रभानु एक प्रवीण धनुर्धर और कुशल योद्धा बन गया। उसमें बड़े शूर-वीर और प्रतापी राजा के लक्षण दिखाई देने लगे। साथ ही उसमें नए देश देखने, साहसपूर्ण कार्य करने और संसार में नाम कमाने का भी चाव पैदा हो गया। यह कठिन से कठिन कार्य करने में भी घबराता नहीं था। वीरता और शूरता में तो अपने से बड़ी उमर वालों को भी मात करता था। वह तपस्वी के अन्य चेलों के लिए आदर्श बन गया था।

इस तरह कुमार चित्रभानु की शिक्षा-दीक्षा पूर्ण हो गई। वह समस्त विद्याओं में पारङ्गत हो गया। लेकिन---

[संशेष]

किसी गाँव में "झगड़ालू झुनिया" नाम की एक औरत रहती थी। बिना किसी वजह हर रोज गाँव वालों से झगड़ने और कोसने के कारण ही उसका ऐसा नाम पड़ गया था। उसके मारे सब की नाक में दम था। एक दिन गाँव के बड़े-बूढ़े सभी पुराने पीपल के नीचे जमा हुए। उन्होंने बड़ी देर तक सोच-विचार कर अन्त में निश्चय किया कि झुनिया को गाँव से निकाल देना चाहिए। उन्होंने कुछ रुपया जमा किया और ढिँढोरा पिटवा दिया कि "जो झगड़ालू झुनिया को लड़ाई-झगड़े में हरा कर भगा देंगे, उन्हें यह रकम ईनाम मिलेगी।"

ईनाम का नाम सुन कर बहुत से लोगों का मन ललचा गया। लेकिन यह विश्वास किसी को न था कि वे झुनिया को झगड़े में जीत सकेंगे। इसलिए कोई आगे न बढ़ा।

उसी गाँव में बलराज नाम का एक बूढ़ा आदमी रहता था। उसके इकलौते लड़के का नाम धनराज और पतोहू का नाम प्रकाशो था। प्रकाशो की उम्र ज्यादा न थी; लेकिन वह थी बड़ी चालाक। गाँव वालों का ढिँढोरा सुनते ही उसने पति से कहा-"झुनिया को हरा कर गाँव से भगा देने का बीडा मैं उठा सकती हूँ।"

धनराज को उसकी बात सुन कर हँसी आई। उसने पत्नी से कहा-"अरे, झुनिया का नाम सुनते ही बड़े-बड़ों की नानी मर जाती है। तू है किस खेत की मूली ! बेकार की झट मोल न ले ! इस ईनाम के बिना भी हमारा काम चल जाएगा।"

मगर प्रकाशो ने जिद्द पकड़ी। उसने इस बार ससुर से जाकर कहा कि "झगड़ालू झुनिया को मैं हरा दूँगी।" ईनाम के लालच से बलराज ने उसका कहना मान भी लिया।

कृष्णकुमारी

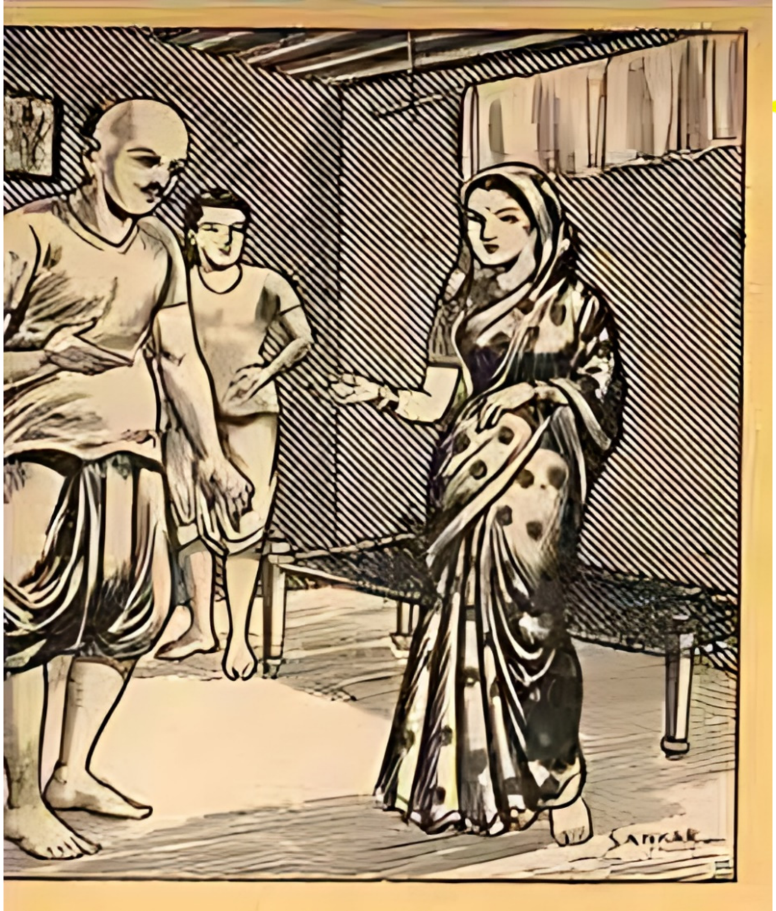

अब सवाल यह था कि इन दोनों में प्रतियोगिता कहाँ हो। प्रकाशो ने खूब सोच-विचार कर एक उपाय सुझाया। उसने बताया-"नदी का किनारा इस प्रतियोगिता के लिए अच्छा रहेगा। ज्यादा दूर भी नहीं। एक पुराने जूते और एक झाड़ू के अलावा मुझे और कुछ नहीं चाहिए।"

सारा इन्तजाम कर लिया गया। प्रकाशो नदी में एक नाव पर चढ़ कर खड़ी हो गई। उसके बाएँ हाथ में एक पुराना जूता था और दाएँ में एक झाड़ू। उसने अपना मुँह घूँघट में छुपा लिया था जिससे झुनिया को मालूम न हो कि उसकी प्रतिद्वन्दिनी कौन है ?

उधर कुछ लोगों ने जाकर झुनिया को खबर दे दी। वह तो बस, आग-बबूला हो गई। कौन है वह जो मुझसे झगड़ने चली है। अभी चखा देती हूँ उसे मजा।कहती हुई वह नदी किनारे चली।

थोड़ी ही देर में नदी किनारे गाँव वाले सभी जमा हो गए। कुछ लोग तमाशा देखने के ख्याल से और कुछ लोग इस आशा से कि झगड़ालू झुनिया हार जाएगी। प्रकाशो को देख कर वे सब चकित रह गए।

"यह नादान लड़की इस खूँसट बूढ़िया से कैसे झगड़ेगी ?" सब लोग सोचने लगे।

झगड़ा शुरू हो गया। झुनिया भर्राए हुए.. गले से अपनी अज्ञात प्रतिद्वन्दिनी को कोसने लगी। उसके मुँह से गालियों की बौछार होने लगी। प्रकाशो नाव में चुपचाप खड़ी रही। उसके मुँह से एक भी शब्द न निकला। हाँ, उसने अपने हाथ का झाड़ू झुनिया की ओर दिखा कर हिलाया। इस से झुनिया का क्रोध और भी बढ़ गया। उसके मुँह से गन्दे शब्दों का परनाला और भी जोर से बहने लगा। फिर भी प्रकाशो ने मुँह न खोला। हाँ, इस बार वह अपने बाएँ हाथ का पुराना जूता झुनिया की ओर दिखा कर धमकाने लगी।

बस, झुनिया क्रोध से जल-भुन गई। गालियाँ देते देते उसका गला सूखने लगा। फिर भी यह प्रकाशो को कोसती ही रही। प्रकाश चुपचाप जूते और झाड़ू के इशारे से उसको जवाब देती रही।

थोड़ी देर तक यह तमाशा देखने के बाद सब लोग हँसने लगे। हँसते-हँसते सब का पेट फूलने लगा। इधर झुनिया का गला फिर सूख गया। वह नदी का पानी पी-पी कर प्रकाशो को कोसने लगी। यह देख कर लोगों को और भी हँसी आने लगी।

थोड़ी देर मैं झुनिया का गला इतना भर्रा गया कि आवाज़ सुनाई न देती थी। प्रकाश जैसे की तैसी चैन से खड़ी थी।

तब कहीं बेचारी झुनिया को मालूम हुआ कि उसकी हार हो रही है। इस अजीब दुश्मन का कैसे मुकाबला किया जाय, यह उसकी समझ में न आया। जो उसकी गालियों का जवाब ही न दे, उसे कैसे हराए वह ! तमाशा देखने जो जो लोग आए थे, सभी उसको देख कर हँस रहे थे; इससे उसे और भी चिढ़ हो रही थी। जो लोग उसे दूर से देख कर काँपते और भाग जाते थे, वे आज उसका मजाक उड़ा रहे थे।

"ऐसे अभागे गाँव में मैं नहीं रहूँगी।" यह सोच कर झगड़ालू झुनिया वहाँ से न जाने, कहाँ चली गई।

गाँव वालों ने प्रकाश का बहुत सम्मान किया। लोगों ने उसकी सूझ-बूझ को बहुत सराहा। उसने झगड़ालू झुनिया को बात ही बात में हरा कर भगा दिया था। गाँव के बड़े-बूढ़े पीपल के नीचे फिर जमा हुए। उन्होंने ईनाम की रकम दुगुनी करके प्रकाशो को देने का निश्चय किया।

उस दिन से प्रकाशो के ससुर की गरीबी दूर हो गई। वे सभी बड़े चैन से जिन्दगी बिताने लगे।

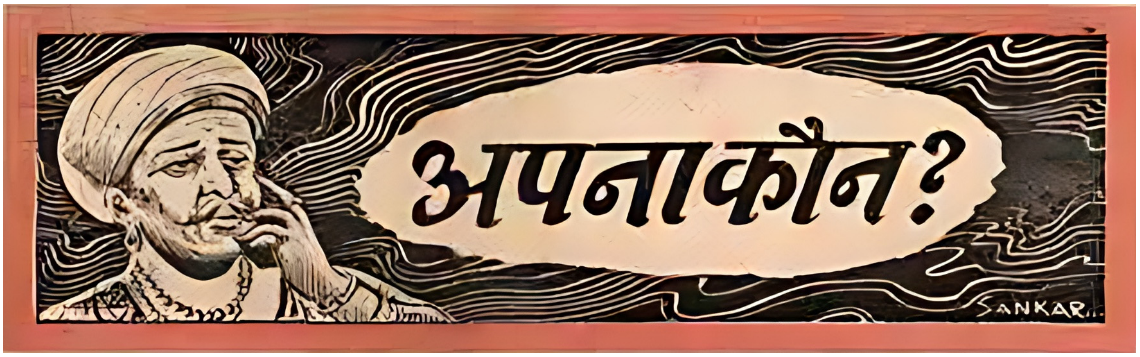

किसी समय धर्मदत्त नाम का एक वैश्य-पुङ्गव रहता था। उसके राजदत्त और धनदत्त नाम के दो लड़के थे।

धर्मदत्त पहले था तो बड़ा गरीब। लेकिन इसे उसकी खुशकिस्मती का जोर कहिए या अक्लमन्दी का, अन्त में उसने करोड़ों कमाए। आज ऐसा कोई महा-सागर नहीं था, जिस की छाती पर धर्मदत्त के जहाज न खेलते हों। ऐसे कोई महाद्वीप नहीं थे, जिन्हें धर्मदत्त के विश्वास पात्र सेवकों ने छान न मारा हो। संसार में व्यापार की ऐसी कोई चीज़ें नहीं थीं, जिनके जरिए उसने थोड़ा-बहुत रुपया न कमाया हो।

धर्मदत्त की उम्र पचास से ज्यादा हो गई थी। उसके दोनों लड़के भी सयाने हो गए थे। व्यापार का सारा गुर जान कर वे अपने पिता की बड़ी मदद कर रहे थे। धर्मदत्त सब तरह की चिन्ताओं से मुक्त हो गया था। फिर भी न जाने क्यों उसका मन कुछ सूना-सूना सा रहता था।

एक दिन उसने सोचा-"मेरे दोनों बेटे बड़े हो गए हैं। अब उन्हें मेरे परामर्श की कोई आवश्यकता नहीं। मैं भी बूढ़ा हो गया हूँ। लेकिन आज तक मैं किसी की कोई भलाई नहीं कर सका हूँ। बहुत से लोग ऐसे होंगे जिन्हें व्यापार के सिलसिले में मैंने नुकसान पहुँचाया होगा। अगर उनमें से किसी की कुछ भलाई कर सकूँ तो बहुत अच्छा हो। इस से अवश्य मेरे चित को शान्ति पहुँच जाएगी।

यह विचार पैदा होते ही धर्मदत्त ने अपने दोनों बेटों को बुलाया और व्यापार का सारा भार उन्हें सौंप दिया। कुछ ऐसे भेद भी थे, जो आज तक उसके अलावा कोई न जानते थे। वे सब भेद उसने उन्हें बता दिए। अन्त में उसने कहा-"बच्चो !

रामसुख पाण्डे

मैं कल सवेरे उठ कर परदेश जाने वाला हूँ। बहुत दिन तक लौट कर नहीं आऊँगा।"

यह खबर सुन कर उसके लड़कों ने कुछ शोक प्रगट किया। लेकिन मन में खुशी भी हुई कि सारा व्यापार हाथ में आ गया।

दूसरे दिन धर्मदत्त बड़े तड़के उठ कर परदेश जाने की तैयारी करने लगा। उसने दोनों लड़कों को बुला कर जो कुछ कहना था, कह दिया और विदा ली। उसके हाथ में सिर्फ एक छोटी सी थैली थी। दोनों लड़कों ने वह थैली तो देखी; लेकिन उसके अन्दर क्या है, यह उन्हें मालूम न हुआ। मालूम होता तो बेचारे ताज्जुब में पड़ जाते।

धर्मदत्त ने कह तो दिया कि परदेश जा रहा हूँ; लेकिन वह नगर छोड़ कर कहीं नहीं गया। साँझ तक इधर-उधर भटक कर उसने समय टाला। अन्धेरा होते ही नगर के बाहर गरीबों के मुहल्ले में गया और एक जगह कपड़े बदल डाले। उसने अपने कपड़े उतार कर चीथड़े पहन लिए जिससे कोई उसको पहचान न सके।

जाड़े के दिन थे; इसलिए सब जगह लोग किवाड़ बन्द कर आराम से सोने लग गए थे।

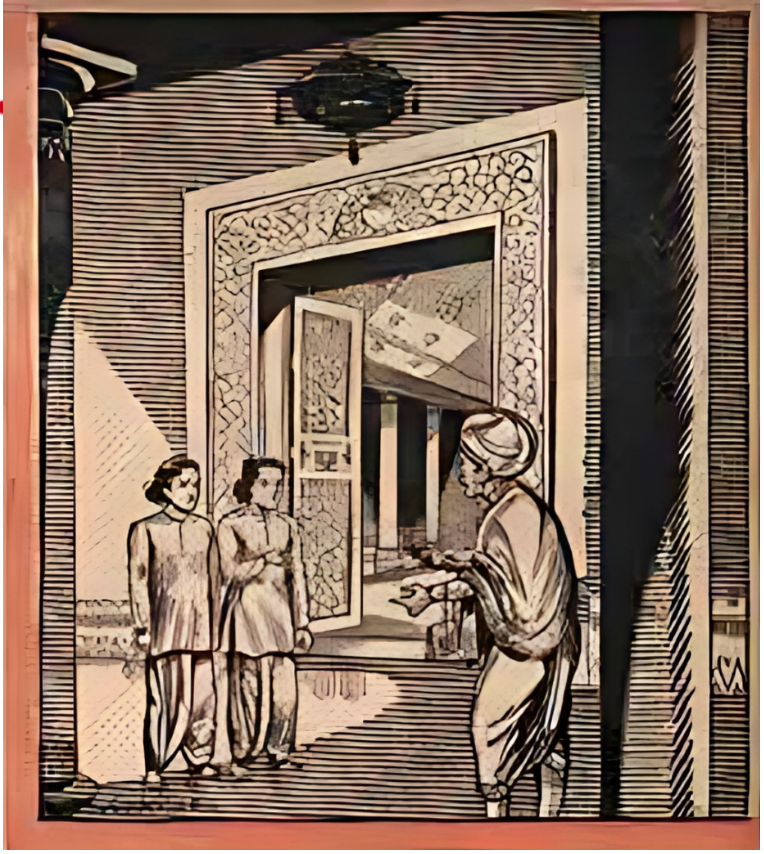

सड़कें सूनी पड़ी थीं। हाँ, जगह जगह कुत्तों के भौंकने की आवाज सुनाई दे रही थी।

धर्मदत्त बड़ी दूर चल कर एक झोपड़ी के पास जाकर ठहर गया और बोला-"मैया ! में परदेशी हूँ, बूढ़ा हूँ। चलते चलते बहुत थक गया हूँ। क्या आज रात आराम करने की जगह मिलेगी ?" "कोन हो भैया तुम ?अन्दर आ जाओ न !" अन्दर से एक औरत ने जवाब दिया। धर्मदत्त झट टट्टी धकेल कर अन्दर घुस गया।

धर्मदत्त को अच्छी तरह मालूम था कि उस झोंपड़ी में कौन रहता है। उस में एक बेवा औरत और उसके तीन बच्चे रहते थे। यह

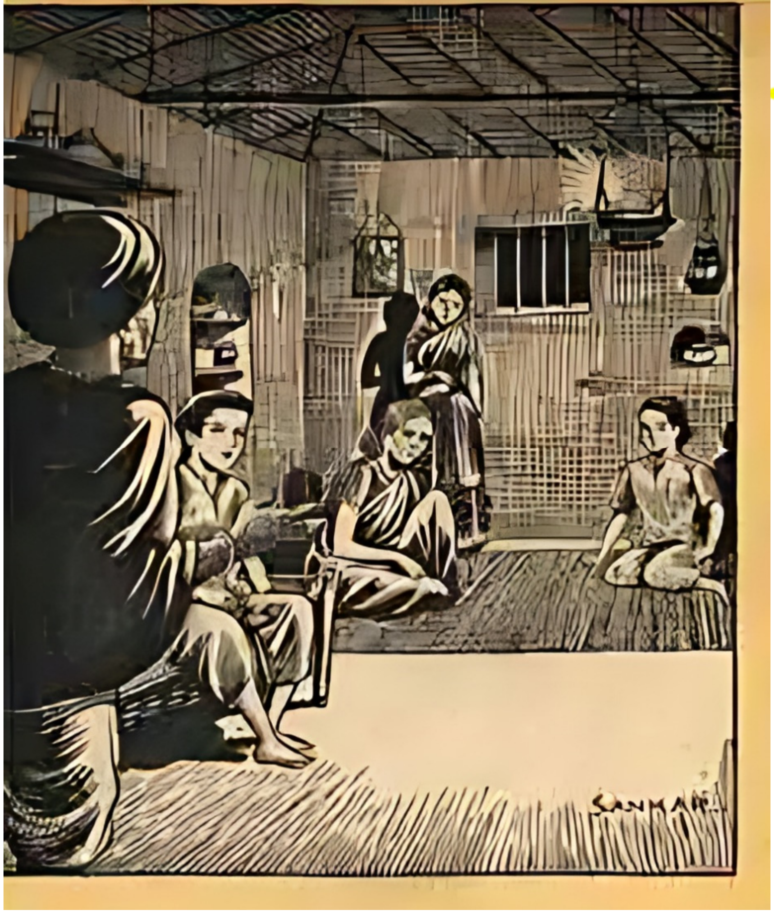

दिवङ्गत सोमगुप्त का परिवार था। इस सोमगुप्त ने किसी समय व्यापार में धर्मदत्त से होड़ की थी। लेकिन उस होड़ में इसकी हार हुई। बेचारे का दिवाला पिट गया। उसकी सारी जायदाद काफ़ूर हो गई। आखिर इसी चिन्ता से घुल-घुल कर वह मर गया। उसकी पत्नी अपने बच्चों के साथ नगर के बाहर गरीबों के मुहल्ले में, एक झोंपड़ी में जाकर रहने और बड़ी मुश्किल से अपने दिन काटने लगी।

झोंपड़ी के अन्दर कदम रखते ही धर्मदत्त का मन विकल हो गया। उसने सोचा-"इस परिवार की दुर्दशा का कारण मैं ही हूँ।" लेकिन भाग्यवश उसे किसी ने नहीं पहचाना।

उस परिवार को देख कर धर्मदत्त को बहुत खुशी हुई। उन सब के मुखड़ों पर गरीबी की निशानियाँ तो थी; मगर किसी तरह के असन्तोष या पीड़ा के लक्षण नहीं थे। वे सुखी थे। बेचारे धर्मदत्त की देहली पर लक्ष्मी नाचा करती थी। फिर भी वहाँ सुख-शान्ति का नाम तक नहीं था।

उस रात धर्मदत्त खा-पी कर वहीं सो रहा। तरह तरह के व्यञ्जन-ज्योनार तो नहीं थे। लेकिन जो कुछ खाने को मिला, उसी से आत्मा तृप्त हो गई। धर्मदत्त को भोजन कभी उतना स्वादिष्ट नहीं लगा था। दूसरे दिन सवेरे उठ कर उसने बेबा से कहा-"मैया ! मुझे शहर में कुछ काम है। जाता हूँ। आप को ज्यादा कष्ट न दूँगा।" लेकिन उस औरत ने कहा-"भैया ! बाहर चाहे जहाँ घूमो फिरो; खाने के लिए यहीं आ जाना।" धर्मदत्त ने मन ही मन खुश होकर कहा-"अच्छा !"

यों दस दिन बीत गए। धर्मदत्त ने उस घर में जी भर कर आतिथ्य पाया। एक दिन उसने कहा-"मैया ! आप कितनी अच्छी हैं। जान न पहचान मुझे अपना मेहमान बना लिया।"

"भैया! तो क्या घर आए पाहुन को लौटा हूँ ! हम गरीब तो हैं, मगर कञ्जूस नहीं हैं।" उस औरत ने जवाब दिया। "और मैं हूँ कि आ गया, और बस, आसन जमा लिया। दस दिन से टलने का नाम नहीं लेता।" धर्मदत्त ने हँस कर कहा। "तो क्या हुआ भैया ! तुम्हारे लिए हम कोई खास चीजें तो बनाते नहीं? जो कुछ बनता है खा लेते हो और पड़े रहते हो। उमर ढल गयी तुम्हारी भी। इस परदेश में कहाँ कहाँ भटकते फिरोगे ?" उस औरत ने कहा।

अब धर्मदत्त से सभी बात बताए बिना न रहा गया। उसने कहा-"मैया ! मैं परदेशी नहीं हूँ। मैं इसी नगर का रहने वाला हूँ। मेरा नाम धर्मदत्त है। पहचाना मुझे ?"

"भैया ! धर्मदत्त के बारे में सुना तो था। मगर कभी देखा नहीं था। क्या वह धर्मदत्त करोड़ पति नहीं है ! इन चीथड़ों में तुम कहोगे मैं धर्मदत्त हूँ तो कौन विश्वास करेगा ?" उस औरत ने कहा।

तब धर्मदत्त ने सारी कहानी कह सुनाई। सोमगुप्त और उसके बीच किस तरह होड़ शुरू हुई, इस होड़ के कारण किस तरह सोम गुप्त का

दिवाला निकल गया, यह सब उसने सिलसिले से सुनाया। अन्त में कहा- "आज मेरी भी हालत कुछ अच्छी नहीं है। बेटों ने मुझे घर से निकाल दिया है। इस बुढ़ापे में क्या कर सकता हूँ ! इधर-उधर भटक रहा हूँ।"

उस औरत ने उसे कुछ नहीं कहा। आखिर एक लम्बी साँस लेकर बोली-"भैया ! जो हो गया सो हो गया ! इस हालत में अब तुम कहाँ जाओगे ! यहीं रह जाओ ! तुम्हें किसी चीज की कमी न होगी।" धमदत्त ने कहा-"अच्छा! लेकिन आज शाम को जरा शहर हो आऊँगा।" उस शाम को धर्मदत्त साथ लाई हुई थैली

लेकर घर लौट गया। पिता को देख कर राजदत्त और धनदत्त ने कहा- "पिताजी! भले आए। रोज़ आप ही की चर्चा हो रही थी। इतनी जल्दी कैसे लोट आए आप ?" "एक जरूरी काम है। इसलिए जल्दी चला आया। मुझे अभी पचीस हजार अशर्फियाँ चाहिए।" धर्मदत्त ने कहा।

"हाय ! हाय! क्या किया जाय ? घर में तो फूटी कौड़ी नहीं है।" बड़े ने कहा।

"इतनी बड़ी रकम लेकर क्या कीजिएगा ?" छोटे ने पूछा।

"मैं यह रकम लेकर एक गरीब परिवार की सहायता करना चाहता हूँ।" धर्मदत्त ने कहा और सोमगुप्त और उसके परिवार की सारी राम कहानी कह सुनाई।

पिता की बातें सुन कर लड़के आग बबूला हो गए। पसीने की कमाई ले जाकर ऐरे गैरों को बाँट देना चाहते हो? संसार में ऐसा भी होता है कहीं?" वे बोले। उनका चिल्लाना सुन कर घर के नौकर-चाकर सभी वहाँ जमा हो गए।

धर्मदत्त ने कहा-"भाई ! गुस्सा न करो। मैंने तुम दोनों को करोड़ों कमा कर दिए। पाला-पोसा और बड़ा किया। लेकिन आज तुम पच्चीस हजार अशर्फियाँ देने से इनकार कर रहे हो, जो तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं है। मैं तुम लोगों का स्वभाव अच्छी तरह समझ गया। उतना बेवकूफ नहीं हूँ। लो, यह देखो !" कह कर उसने अपने हाथ की थैली खोल कर दिखा दी। उस थैली में लाखों की कीमत वाले बहुत से हीरे-जवाहरात थे। बेटे यह देख कर भौंचक्का रह गए। धर्मदत्त थैली लेकर उदास मन से, सिर झुकाए घर से निकला।

साँझ को जब धर्मदत लौट आया तो सोमगुप्त की बेवा पत्नी और बच्चों ने प्रेम-पूर्वक उसका स्वागत किया। धर्मदत्त के घर पर जो बीती, उसका उन्हें पता न था।

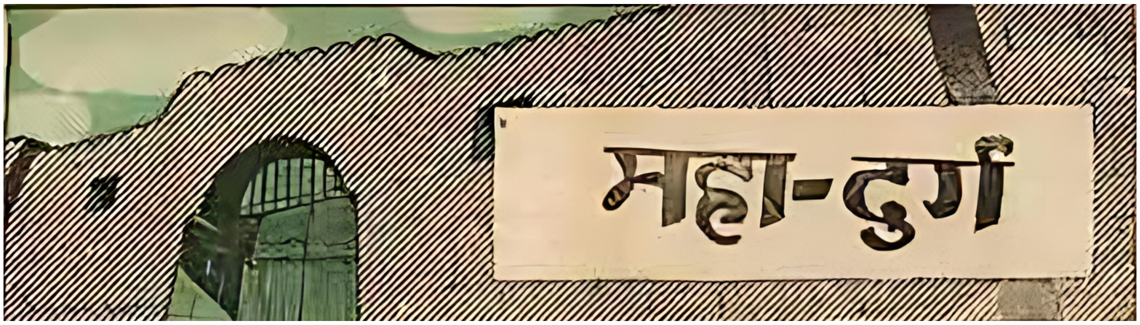

किसी समय रणवीरसिंह नाम का राजा रहता था। उसके पिता बड़े प्रतापी थे। उनके जमाने में राज्य की सीमा दूर दूर तक फैली हुई थी। उनका नाम सुनते ही दुश्मन काँप उठते थे। उन्होंने अपने कौशल से राज्य का कामकाज इतना अच्छा चलाया था कि उनका यश चारों ओर छा गया। लेकिन रणवीरसिंह बड़ा कपूत निकला। भोग-विलास में पड़ कर वह राज-काज सब भूल गया। उसके अत्याचारों से पजा भी तङ्ग आ गई। मौका पाकर सामन्त लोग स्वतन्त्र बन बैठे और दुश्मन लोग एक एक कर उसके राज्य के बहुत से हिस्से दबीच बैठे। यहाँ तक कि उसका राज्य बहुत छोटा वन गया। ऐसी हालत में रणवीर सिंह की मृत्यु हो गई और युवराज बलवीरसिंह गद्दी पर बैठा। बलवीर अपने दादा की तरह ही बड़ा वीर और उद्यमी पुरुष था। गद्दी पर बैठते ही उसने राज्य की दशा सुधारना शुरू कर दिया। चापस दरबारियों को गर्दनिया देकर निकाल दिया गया। बुद्धिमानों की उस दरबार में फिर से खातिर होने लगी। इन्साफ़ दूध का दूध और पानी का पानी होने लगा। यहाँ तक कि व्याकुल प्रज्ञा के मन में नई आशा जाग उठी।

इस तरह राज्य में सुव्यवस्था स्थापित करके बलवीर ने दुश्मनों की तरफ निगाह फेरी। जो जो पड़ोसी राजा उसके राज के हिस्से दबोच बैठे थे, उन सब को उसने एक सबक सिखाने का हरदा कर लिया। राज्य में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। सब लोग बड़े जोश के साथ भाग लेने लगे। लाखों आदमी सेना में भर्ती होने के लिए आगे बढ़े। शक्तिशाली सेना तैयार हो गई। उत्साही वीर युवक अपने नौजवान राजा के नेतृत्व में मातृ-देश का गौरव बढ़ा कर, शत्रु देशों में

अपने विजय की पताका फहराने निकले। मारू-बाजे की आवाज सुनाई देने लगी।

वीर का विजय रथ दो साल तक बेरोक-टोक आगे बढ़ता रहा। कई राजाओं ने उसकी विशाल सेना को देखते ही सिर झुका लिया। कुछ देशों की प्रजा ने उसकी उदारता और वीरता से प्रभावित होकर बाँह खोल कर उसका स्वागत किया। और कुछ हठी राजाओं ने लोहे का स्वाद चखने के बाद ही लोहा माना। इस तरह जहाँ जहाँ गया, उसी की जीत होती गई। यों क्रमशः एक एक प्रदेश जीत कर लड़ाई में हारे हुए राजाओं से सुलह करते, और पुराने दुश्मनों को नीचा दिखा कर, अन्त में उन्हें क्षमा करते, बलवीर महा दुर्ग नाम के किले के पास जा पहुँचा।

महा-दुर्ग, जैसा कि नाम से ही ज्ञात हो जाता है, एक बड़ा मज़बूत किला था। उसके चारों ओर तीन तीन ऊँची चाहरदीवारियाँ थीं। किले में एक लाख से ज्यादा सैनिकों के रहने की व्यवस्था थी। महा-दुर्ग के राजा लोग ऐसे नहीं थे, जो बात बात पर दूसरों से झगड़ा मोल लेते। हाँ, समय आने पर अत्याचारी आक्रमणकारियों को पाठ पढ़ाने में वे कभी नहीं हिचकिचाते थे। ऐसे वंश में जन्म लेकर भी, बलवीर के पिता रणबीरसिंह के समकालीन महा दुर्ग के राजा ने उसकी कमजोरी से फायदा उठा कर, राज्य का कुछ हिस्सा हड़प लिया था। उस हिस्से को फिर से जीतने के लिए ही बलवीर ने महा-दुर्ग पर चढ़ाई कर दी।

महा-दुर्ग सचमुच एक दुर्गम दुर्ग था। उस पर घेरा डाल कर बैठे रहने के सिवा और कुछ नहीं किया जा सकता था। किले के फाटक तोड़ कर अन्दर घुसने की चेष्टा बड़ी भारी मूर्खता होती। यह बात बलवीर के सेनापति

ने उसे अच्छी तरह समझा दी थी। इसलिए बलबीर ने चुपके से घेरा डाल दिया और दूत के द्वारा सन्देश भेज दिया कि "जब तक महा-दुर्ग के निवासी हार नहीं मान लेते, तब तक घेरा नहीं उठाया जायगा।"

बलवीर के दूत को अन्दर जाने से किसी ने नहीं रोका। शीघ्र ही वह राज-महल के पास पहुँच गया। द्वारपालों ने उसे ले जाकर एक सुन्दरी युवती के सामने खड़ा कर दिया। वह सुन्दरी राजोचित वस्त्र पहने, गद्दी पर बैठी हुई थी। उसका मुखड़ा पूनम के चाँद की तरह प्रकाशित हो रहा था। "तुम कौन हो ? क्या चाहते हो ?" उस युवती ने पूछा।

"देवी! माफ करो! मैं अपना सन्देश दुर्ग के स्वामी के सिवा और किसी से नहीं कह सकता।" दूत ने जवाब दिया।

"मैं ही इस देश की स्वामिनी हूँ। पिताजी बीमार हैं। सारा राज-काज मैं ही चलाती हूँ।" उस युवती ने कहा और अपने मुकुट की ओर इशारा किया।

"देवी! हमारे स्वामी बलवीरसिंह जी का यह सन्देश है-"हम ने आप के किले को घेर लिया है। जब तक आप हमारी शर्तों पर सुलह करने

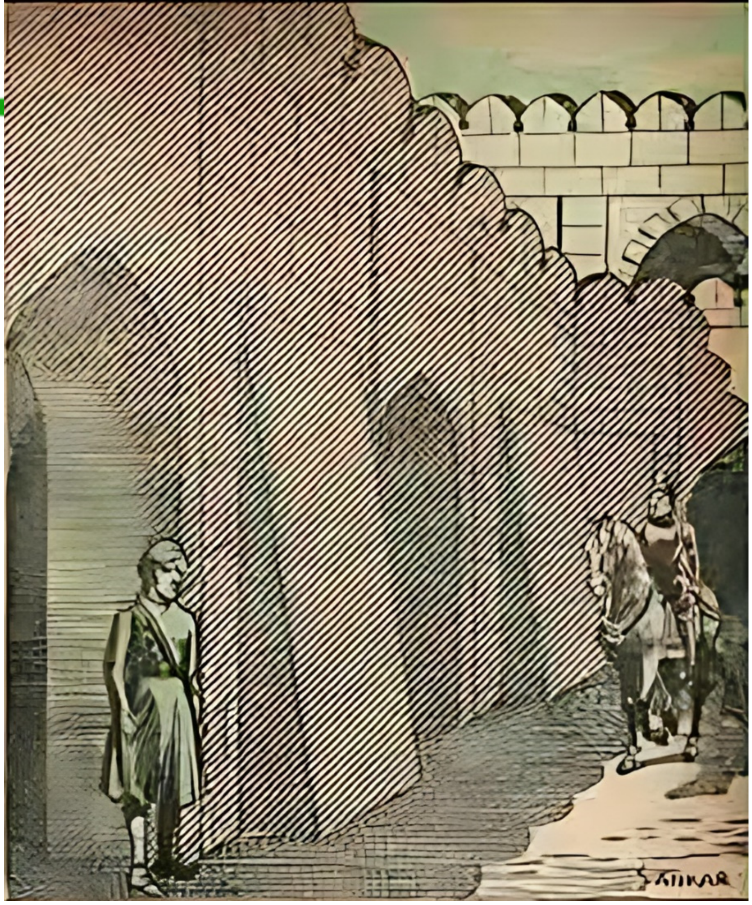

को राजी नहीं होते, तब तक लड़ाई चलती रहेगी। इस लड़ाई में हमारी जो हानि होगी, उसकी जिम्मेवारी आपकी होगी।" दूत ने सन्देश कह दिया।

तब महा-दुर्ग की रानी ने थोड़ी देर तक सोच कर कहा-"महा-दुर्ग की रानी रूपमती ने तुम्हारे स्वामी का सन्देशा सुन लिया। उनसे कहना 'रनवास पर घेरा डालोगे, तभी किले पर कब्जा होगा।' "

यह विचित्र सन्देश दूत की समझ में न आया। महा दुर्ग की रानी ने दूत को किले में घूमने-फिरने की इजाजत दे दी। दूत ने किले में चारों ओर घूम कर हाल-चाल

नादान नहीं तो और क्या ? लड़ाई के समय भी कोई शत्रु दूत को किला देखने देता है ! अन्त में बलवीर ने सोचा "जिस किले पर हमला करके आसानी से कब्जा किया जा सकता है, उस पर घेरा डाल कर बैठे रहने की क्या जरूरत है? इस नादान छोकरी से महा-दुर्ग छीन लेना तो बच्चों का खेल है। भला ऐसी अन्धी हुकूमत कितने दिन टिक सकती है?"

जब यह खबर बलवीर सिंह की सेना में फैल गई कि किले में युद्ध की तैयारियों कहीं नजर नहीं आतीं, तो उनका उत्साह दुगुना हो गया। किले पर हमला करने के ख्याल से सेना को दो हिस्सों में बाँट दिया गया। कुछ जत्थों ने दीवारों पर चढ़ना शुरू किया; कुछ फाटक तोड़ने चले।

जान लिया। सर्वत्र शान्ति विराज रही थी। कहीं युद्ध की सरगरमी दिखाई न पड़ती थी। लोग अपने कामों में लगे हुए थे। सब कुछ देख लेने के बाद दूत लौट गया और अपने स्वामी के पास जाकर रूपमती का सन्देशा सुना दिया।

यह सन्देश बलवीर की भी समझ में न आया। रनवास पर घेरा डालने से किले पर कब्जा कैसे हो जाएगा? यह तो बेसिर-पैर की बात थी। नादान लड़की लड़ाई के बारे में क्या जाने ! सुन्दरी युवती और नई रानी से और आशा ही क्या की जा सकती है ?

दोनों का काम निर्बिघ्न चलने लगा। किले के फाटक पहले ही धक्के में खुल गए। सैनिकों के अन्दर घुसते ही वे अपने आप बन्द हो गए। दीवारों पर चढ़ने वाले सिपाहियों को भी किसी ने नहीं रोका। लेकिन सब से अजीब बात यह थी कि इन दोनों दलों के सिपाहियों में से एक भी लौट न पाया। उन लोगों का क्या हाल हुआ,

यह किसी को पता न चला। दो दिन बाद और एक हमला किया गया। उसका भी यही परिणाम हुआ। जो उस किले में जाता था, लौट कर नहीं आता था।

तब बलबीर ने रूपमती के पास और एक दूत भेजा। उसने कहला भेजा कि "एक हफ्ते के अन्दर अगर किले के रहने वाले घुटने नहीं देक देंगे तो वह सारी सेना के साथ हमला करेगा और भीषण युद्ध करके सारा किला नेस्तनाबूद करके छोड़ेगा।" उत्तर मिला "रनवास पर कब्जा किए बिना किले पर कब्जा नहीं होगा।" यह सुन कर बलबीर को बहुत गुस्सा आ गया। उसने सोचा- "यह उतनी नादान नहीं है ! यह तो मेरा मजाक उड़ा रही है। ऐसी मजाल इसकी ? लेकिन इस के किले के रहने वाले इतने दिन से कैसे जी रहे हैं? कैसे पेट भर रहे हैं। क्योंकि बाहर से तो कुछ भी अन्दर नहीं जाता। मेरे सिपाही आस-पास के गाँवों पर छापे मार मार कर लूट-मार कर रहे हैं। फिर भी उनको भर पेट खाने को नहीं मिलता। हमेशा सोचते हैं-"कब घेरा खतम हो और कब घर लौट चलें। ऐसी हालत में

किले के रहने वाले न जाने, कैसी दुर्दशा में होंगे ! क्या रूपमती यह सच नहीं जानती है ? वह चुपचाप सुलह क्यों नहीं कर लेती है ? इस बेसर-पैर सन्देश का क्या मतलब ?"

कुछ भी हो, बलवीर ने अन्त तक घेरा जारी रखने का निश्चय कर लिया। उसने सोचा-"घेरा तो तभी उठेगा जब वह स्वयं आकर मेरे पैरों पर माथा नवा देगी।" उसे पूरा विश्वास था कि ऐसा होने में ज्यादा दिन नहीं लगेंगे। यही नहीं; उसने किले के फाटक के सामने ही अपना तम्बू तनवा दिया। वह अब हमेशा फाटक की ओर

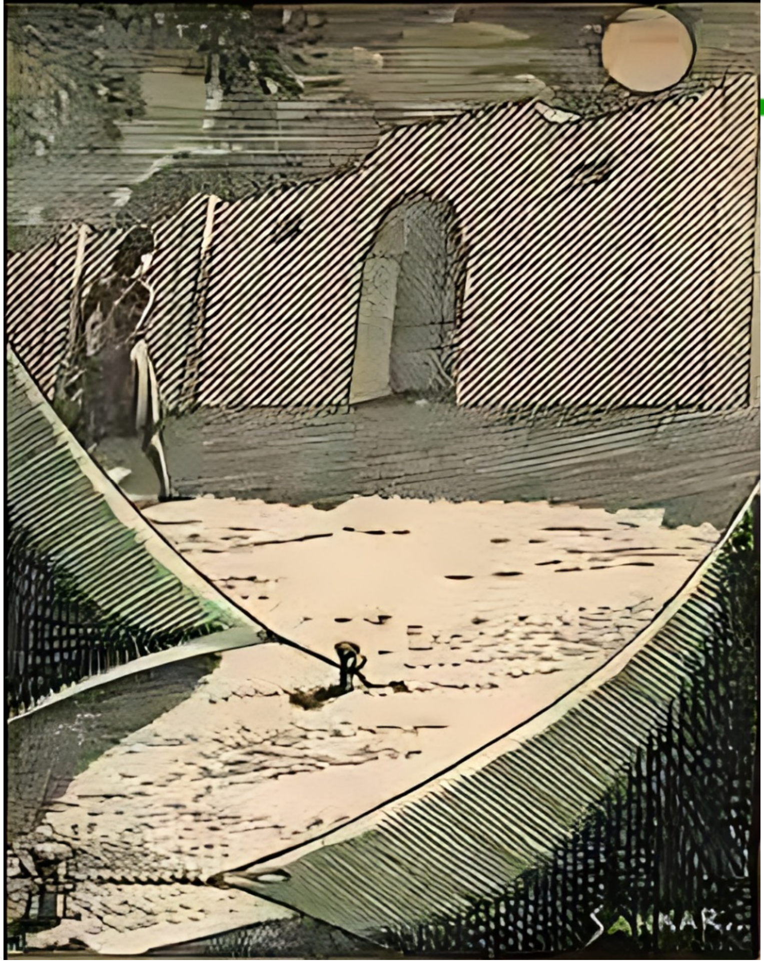

देखता रहता कि न जाने कब फाटक खुलें और कब रूपमती उससे सुलह की भीख माँगने आए !

सच्ची बात तो यह थी कि जिस दिन दूत ने रूपमती की सुन्दरता का बखान कर सुनाया था, उस दिन से बलवीर के हृदय में उसे देखने की प्रबल आकांक्षा पैदा हो गई थी। लेकिन उसकी आशा पूरी नहीं हुई। महीनों बीत गए। न जाने कितनी बार आसमान में चाँद घुल घुल कर अपना सारा तेज खोकर, ओझल हो गया और फिर प्रकाश और सुन्दरता पाकर क्रमशः बढ़ते हुए पूर्ण हो गया! न जाने कितनी बार बलबीर के हृदय में कामना की मधुर तरङ्गें उठी और निराशा के तीर से टकरा कर चूर-चूर होकर विलीन हो गई !

धीरे-धीरे बलवीर की सेना की बड़ी दुर्दशा हो गयी। किले के बाहर कोसों तक वहीं खेती-बाड़ी का नामो निशान न था। ऐसा मालूम होता था, जैसे महा-दुर्ग पर घेरा डाल कर बैठे हुए बलवीर के सैनिकों पर दुर्भिक्ष ने घेरा डाल दिया हो ! सिपाही भूख से बेहाल थे। वे अपने घोड़ों को मार कर खाने लग गए थे। बलबीर को मालम हो गया था कि घेरा अब ज्यादा दिन नहीं च सकता। उसके मन में इस युद्ध के प्रति भयकर घृणा पैदा हो गई थी। सिपाही भी पहले का सारा जोश खो चुके थे और अब हमेशा घर लौटने की चर्चा करते रहते थे। बलवीर ने सोचा-"अब घेरा हटा देने के सिवा कोई चारा नहीं।" लेकिन ऐसा करने के लिए मन राजी नहीं होता था।

उस रात सब जगह पूनम की चाँदनी छिटकी हुई थी। आधी रात हो गई थी। मगर बलबीर की आँखों में नींद का नाम नहीं था। वह खीमे के बाहर खड़ा खड़ा

रूपमती के बारे में सोच रहा था। वह नादान छोकरी है, यह ख्याल तो उसके मन से कभी का हट गया था। अब उसके प्रति मन में एक प्रशंसा का भाव उदित हो चला था। उसे एक बार देख लेने की इच्छा और भी तीव्र हो गई थी। बस, उसने अनजाने ही जाकर किले का फाटक खटखटाया। एक झरोखा खुला और रखवाले ने झाँक कर पूछा-"कौन हो तुम ?" "मैं महाराज बलवीरसिंह का दूत हूँ।" बलवीर ने जवाब दिया।

"अच्छा! ठहरिए।" कह कर रखवाले ने आकर फाटक खोले और उसको अन्दर दाखिल कर लिया। दूसरे ही क्षण बलवीर रूपमती के राज-महल में था और उसकी सब तरह से खातिर हो रही थी। उस रात उसे नींद नहीं आई। किसी तरह पल पल गिन कर रात काटी। बड़े तड़के उठा और जाकर किले में घूमने लगा। उसे किसी ने रोका नहीं। जहाँ गया वहीं भूख से अधमरे, काँटों से सूखे हुए आदमी दिखाई दिए। उनके चेहरे देख कर डर लगता था। एक बूढ़े ने उसको देख कर कहा- "आप परदेशी मालूम होते हैं।

लेकिन आज हम ऐसी दशा में हैं कि आपकी कुछ भी खातिर नहीं कर सकते। साग-सत्तू भी मयस्सर नहीं होता। मेहमानों की खातिर क्या करेंगे ?"

उसकी बातें सुन कर बलबीर की आँखों में आँसू आ गए। वह सीधे राज-महल को लौट आया। उसी समय उसे सूचना मिली कि महारानी उसे दर्शन देने को तैयार हैं। सिपाही लोग उसे रूपमती के सामने ले गए। रानी रूपमती ने उसे देखते ही पहचान लिया। स्वागत-सत्कार करने के बाद उसने पूछा- "दूत बन कर आप ही क्यों आए है ? कोई दूत ही नहीं मिला क्या ?"

बलवीर क्षण भर स्तब्ध रह गया। उसके दूत ने रूपमती की सुन्दरता का बखान कुछ भी बढ़ा चढ़ा कर नहीं किया था। हाँ, वह भी अपनी प्रजा की ही तरह सूख कर काँटा बनी हुई थी। "मुझे तुम्हारा हठ देख कर बहुत खेद हो रहा है। तुम्हारी प्रजा भूखों मर रही है। फिर भी तुम सिर चुकाना नहीं चाहतीं। तुम सुलह क्यों नहीं कर लेती ?" बलवीर ने उससे पूछा।

"हमें मालूम नहीं कि आप क्यों इस किले पर घेरा डाले बैठे हैं। मेरे पिता ने आपके पिता के राज्य का जो हिस्सा हड़प लिया वह तो उजड़ कर कभी का वीरान हो गया। याद रखिए, महा-दुर्ग कभी आपके सामने सर नहीं झुकाएगा। हम सब लोग भूख से तड़प-तड़प कर जान दे देंगे। मगर आपको किले में प्रवेश नहीं मिलेगा। किला जीतने के लिए आपको पहले रनवास पर घेरा डालना होगा।" रूपमती ने कहा।

"तब जाकर बलवीर की समझ में आ गया कि उसके कहने का मतलब क्या है। वह अपने आसन से उठा और रूपमती के सामने घुटने टेक कर बोला-"रूपा। माफ करो मुझे ! मेरे जैसा बेवकूफ और कहीं नहीं मिलेगा। कृपा करके मुझ से व्याह कर लो और कृतार्थ बना दो ! इस दुनियाँ में तुम से बढ़ कर मेरा कोई अपना नहीं है।"

रूपमती ने उसको हाथ पकड़ कर उठाया और अपने सिंहासन पर बिठा लिया। मन्त्री और दरबारियों को खबर भेजी गई। बलवीर ने रनवास पर घेरा डाल दिया।

थोड़ी देर बाद किले के फाटक खुले और बलबीर के सैनिक बाराती बन कर अन्दर आ गए। महा-दुर्ग में नई शोभा दीखने लगी। धूम-धाम के साथ बलवीर का रानी रूपमती से विवाह हो गया। महा-दुर्ग ने अन्त में सर झुका लिया।

कहते हैं कि किसी गाँव में एक धोबी रहता था। उस धोबी के पास एक गधा था। एक दिन वह धोबी धुले हुए कपड़ों की दो गठरियाँ बाँध कर, उन्हें गधे की पीठ पर लाद कर, कुछ गुनगुनाते हुए गाँव की ओर लौट रहा था। अँधेरा हो चला था और वह एक पहाड़ की बगल से जा रहा था।

ऐसे समय उसे किसी के कराहने की आवाज़ सुनाई दी। जाकर देखा तो एक परदेशी हृदय के रोग से छटपटा रहा था। धोबी ने कहा-"भैया ! उठ कर मेरे साथ चलो!"

तब उस आदमी ने कहा-"भई में उठ नहीं सकता। मुझे उठा कर ले चलो।"

धोबी सोच में पड़ गया। इसे उठा कर कैसे ले जाए वह ? फिर रात के वक्त उसे वहाँ छोड़ जाने का भी मन न होता था। इसलिए गधे की पीठ पर से गठरियाँ उठा कर उसने अपनी पीठ पर रख ली और उस परदेशी को गधे पर बिठा कर वहाँ से घर ले चला।

धोबी की जोरू का हृदय तो अच्छा था, मगर जवान तेज थी। जब उसने देखा कि उसका पति पाहुन को साथ ला रहा है तो बोली-"आधी रात गए यह बला कहाँ से लाए हो?" लेकिन धोबी ने धीरे से उसे सारी बात समझा दी। परदेशी के हृदय की पीड़ा क्रमशः बढ़ती गई। आधी रात के वक्त उसने धोबी को बुला कर कहा-"भैया! मैं अब कुछ ही पलों का मेहमान हूँ। मेरी गठरी में एक चन्दन की पेटी है। उसे तुम ले लो। उस में...." यों वह और भी कुछ कहना ही चाहता था कि उसके प्राण पखेरू उड़ गए।

धोबिन ने जब उठ कर यह देखा तो चिल्लाई-"जो सोचा था वही हुआ। यह निगोड़ा सारी दुनियाँ घूम कर आया और हमारे यहाँ मर गया। हाय! हाय ! अब

केशोराम अग्निहोत्री

लोग क्या कहेंगे ! कहेंगे कि रुपयों के लालच से हम ने इसे मार डाला।"

धोबी का सर चकरा गया। उसने कहा-"अच्छा! तो इस लाश को गधे पर लाद कर ले जाता हूँ और मरघट में गाड़ आता हूँ।" यह कह कर वह लाश को गधे पर लाद कर मरघट की ओर ले चला।

बेचारे धोबी को पता नहीं था कि कोई उसका पीछा कर रहा है। पीछा करने वाला भी दूसरा कोई नहीं; एक नाई था जो धोबी के घर के सामने वाले घर में ही रहता था। मरघट जाकर धोबी ने लाश को एक जगह गाड़ दिया और घर लौट कर निश्चित मन से सो रहा। लेकिन नाई को, जिसने धोबी का पीछा करके सारा हाल देख लिया था, बिलकुल नींद न आई। उस बेचारे का पेशा ही था दूसरों के मामलों में दखल देना।

आज उसे अच्छा मौका मिल गया था। तड़के जाकर उसने गाँव के मुखिया से धोबी की शिकायत कर दी। मुखिया ने तुरन्त धोबी को बुलवाया और पूछा-"क्यों बे! तूने परदेशी से जो माल लूट लिया वह अभी उगलता है कि सरकार में दे दे खबर ?"

तब धोबी ने रो धोकर कहा-"हुजूर ! सच कहता हूँ उस परदेशी की गठरी में कानी कौड़ी भी नहीं थी। सिर्फ चन्दन की एक पेटी थी उसके पास।"

तुरन्त मुखिया ने चन्दन की वह पेटी मँगवा कर देखी। उसमें एक पुराने ताड़ के पत्ते और एक पुराने दीपक के सिवा और कुछ नहीं था। उस ताड़ के पते पर किसी अजीब लिपि में कुछ लिखा था। मगर वह मुखिया की समझ में न आया। तब मुखिया को बहुत गुस्सा आया और उसने नाई और धोबी, दोनों को गालियाँ देकर भगा दिया।

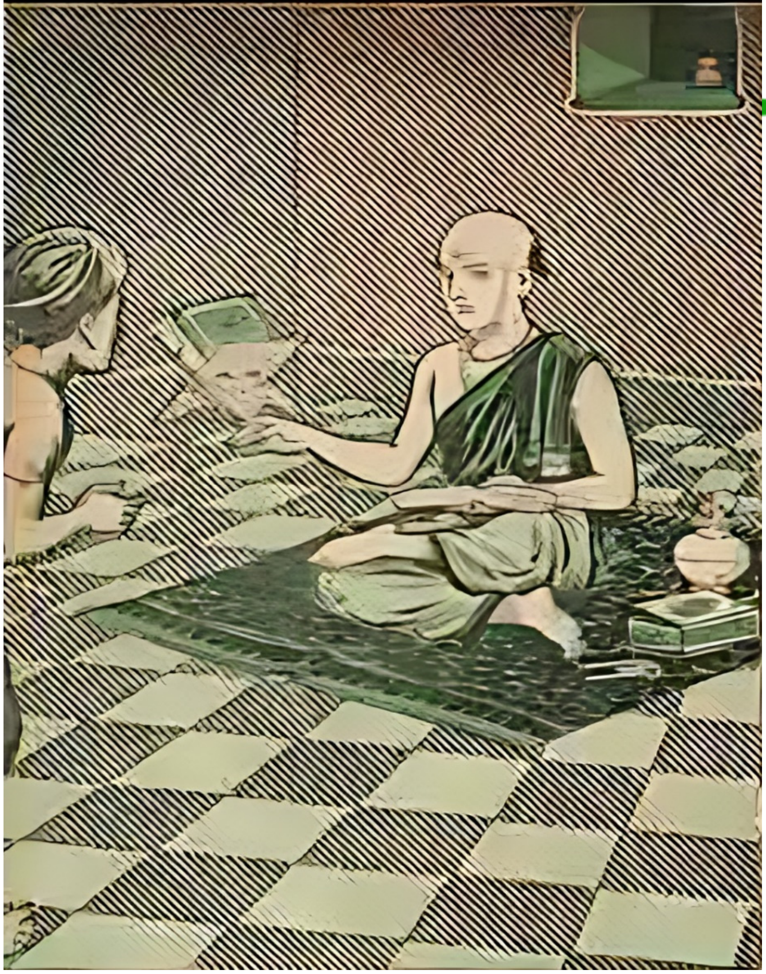

ढकना खोला तो ताड़ के पत्ते पर नजर पड़ी। "इसमें क्या लिखा है ? किसी के पास जाकर पढ़वा क्यों नहीं लेते ?" उसने कहा।

तब धोबी उस पत्ते को गाँव के पण्डितजी के पास ले गया। पण्डितजी ने पढ़ कर बताया-"अरे! यह तो एक मन्त्र है। अगर किसी जगह सोना-चाँदी या रुपया-पैसा गड़ा हो और तुम उस जगह जाकर वह मन्त्र पढ़ो तो वह सम्पदा तुम्हारे वश में आ जाएगी। लेकिन क्या फायदा ?" अन्त में पण्डितजी का सारा जोश ठण्डा पड़ गया।

धोबी थोड़ी ही दूर गया था कि मुखिया ने उसे फिर बुलवाया और कहा-"अब की तुम्हें छोड़े देता हूँ। यह चन्दन की पेटी तुम्हीं ले जाओ। लेकिन तुमने हमें नाहक परेशान किया। इसलिए जुर्माने के तौर पर अपने गधे को लाकर हमारी बाडी में बाँध दो! यही तुम्हारी सजा है।"

धोबी उदास मन से घर लौटा। बेचारा नाहक अपने गधे से हाथ धो बैठा था। इस गुस्से में जब उसने घोबिन को कहते सुना कि घर में लकड़ियाँ नहीं है, तो उसने उसे वह चन्दन की पेटी दे दी और झुञ्झला कर कहा-"जा। इसे ले जाकर चूल्हा सुलगा ले।" धोबिन ने पेटी का

"क्यों पण्डितजी ! क्या बात है ?" धोबी ने पूछा। "कुछ नहीं! यह मन्त्र पढ़ कर एक मन्त्र-दीप जलाना होगा। तभी काम बनेगा। बैसा दीप कहा मिल कहाँ मिलेगा ?"

पण्डितजी की यह बात सुन कर धोबी तुरन्त दौड़ कर घर गया और चन्दन की पेटी खोल कर उस में रखा हुआ दीपक उठा लाया। उसने उसे पण्डितजी को दिखाया। पण्डितजी उसे देख कर उछल पड़े। "अरे! तुझे कहाँ मिल गया यह ? तू तो बड़ा उस्ताद मालूम होता है।" पण्डितजी ने कहा। तब

धोबी ने आदि से अन्त तक परदेशी की सारी कहानी सुनाई। तब पण्डितजी ने और एक बार उस ताड़ के पत्ते को पढ़ा और धोबी से पूछा-"तो वह परदेशी तुझे किस जगह दिखाई दिया था ?" धोबी ने पण्डितजी को उस पहाड़ और उस जगह का नाम बता दिया, जहाँ परदेशी से उसकी मुलाकात हुई थी।

उस रोज़ आधी रात को चुपके से उठ कर पण्डितजी धोबी के साथ चले और एक दो घण्टे बाद उस पहाड़ के नजदीक पहुँचे। घोबी ने पण्डितजी को वह जगह दिखा दी, जहाँ उसे परदेशी कराहता दिखाई दिया था। पण्डितजी ने मन्त्र-दीप जलाया और धोबी को पकड़ने को दिया। फिर दोनों पहाड़ के पास गए। पण्डितजी ने मन्त्र-दीप की रोशनी में ताड़ के पत्ते पर लिखा हुआ मन्त्र पढ़ना शुरू किया।

आश्चर्य ! मन्त्र पढ़ते ही धड़ाके की आवाज़ हुई और पहाड़ की चट्टान में एक दरवाज़ा खुल गया। चकित होकर पण्डितजी और धोबी दोनों अन्दर घुसे। उन्हें नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ दिखाई दीं। उस सुरङ्ग में बहुत दूर जाने के बाद उन्हें दो बड़े ताम्बे के कलसे दिखाई दिए, जिन में अशर्फियाँ और हीरे-जवाहर भरे पड़े थे। उन्हें देख कर धोबी की अखें चौंधिया गई। पण्डितजी ने कहा-"खबरदार ! दीया न बुझने देना। नहीं तो अनर्थ हो जाएगा !" फिर उन्होंने धोबी का और अपना, दोनों दुपट्टे जमीन पर बिछा दिए और अशर्फियों और हीरे जवाहरों की दो गठरियाँ बाँध ली। फिर गठरियाँ उठा कर दोनों बाहर चले और सही-सलामत बाहर पहुँच गए। पण्डितजी ने बाहर जाते ही दीप बुझा दिया। तुरन्त चट्टान का दरवाजा बन्द हो गया।

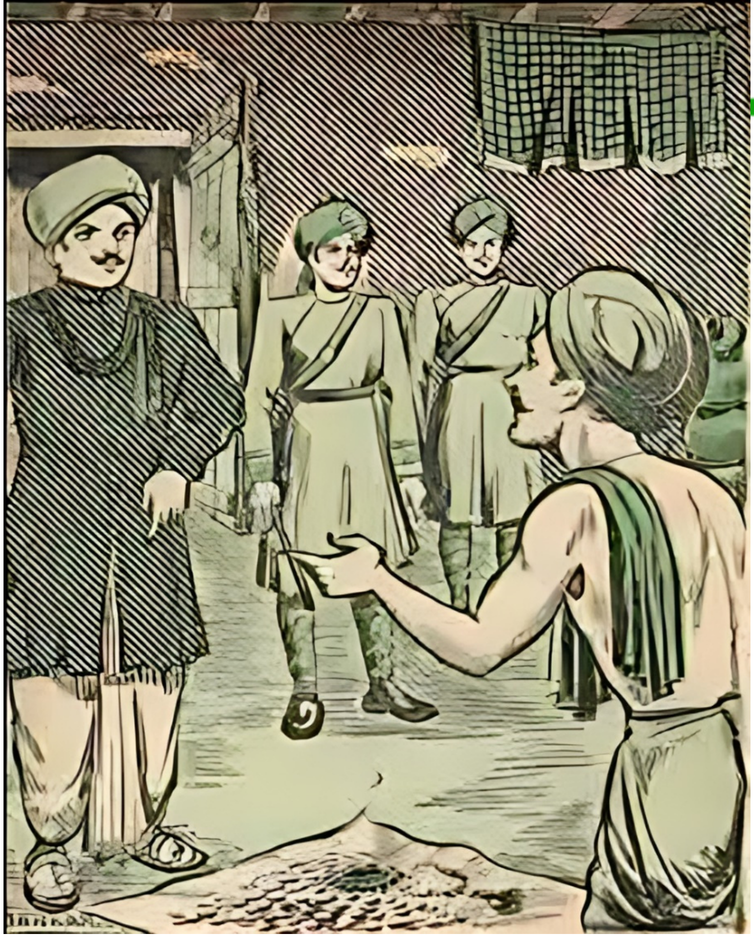

लौटते वक्त पण्डितजी ने धोबी से कहा-"भई ! भेद किसी को मालूम न होने देना। अपनी बीबी से भी जिक्र न करना ! बरना जान न बचेगी!" गाँव में पहुँच कर दोनों अपनी अपनी गठरी लेकर घर चले गए।

धोबी जब घर पहुँचा तो देखा कि घरवाली जाग रही है। वह कहने लगी-"आधी रात तक कहाँ कहाँ मारे फिरते हो ? घर आने को फुरसत नहीं मिलती ?" तब धोबी ने काँपते हुए कहा-"चुप रहो ! चिल्लाओ नहीं ! लो, देखो ! तुम्हारे लिए क्या क्या लाया हूँ ?" यह कह कर उसने गठरी खोली और एक मोहनमाला धोबिन की ओर फेंक दी। धोबिन आँखें फाड़ फाड़ कर उसकी ओर देखने लगी और धोबी को दिक करने लगी कि "बताओ ! तुम्हें यह सब कहाँ मिल गया ?"

तब धोबी ने सारा किस्सा कह दिया और हिदायत कर दी कि किसी से कहना नहीं। धोबिन ने पति के आज्ञानुसार यह भेद किसी को नहीं बताया सिर्फ एक नाई की जोरू के सिवा।

और क्या था ? नाई की जोरू ने यह बात अपने पति से कह दी। उसने जाकर मुखिया के कान में फूँक दिया। मुखिया ने तुरन्त दो चपरासियों के साथ आकर धोबी के घर की तलाशी ली। माल आसानी से मिल गया। धोबी ने छिपा कर भी नहीं रखा था उसे।

"तू ने सचमुच उस परदेशी को मार डाला था। नहीं तो यह सब माल कहाँ से आया ?" मुखिया ने गरज कर पूछा। "मालिक ! कृपा करो। मैं बिलकुल बेकसूर हूँ। यकीन न हो तो पण्डितजी से पूछ लीजिए। वे ही सारा किस्सा सुना देंगे।"

धोबी ने घर-थर काँपते हुए कहा। मुखिया ने तुरन्त पण्डितजी को पकड़ लाने का हुक्म दिया। लेकिन पण्डितजी ठहरे चालाक। उन्होंने धीरे से कहा-"भैया ! हल्ला क्यों मचाते हो! आज रात तुम भी चलो हमारे साथ। खुद ही आकर देख लेना कि व हाँ कितना धन है।" मुखिया मान गया। उस रात ये सभी उस पहाड़ की ओर चले। मुखिया ने नाई को भी साथ ले लिया था। पहाड़ के पास पहुँच कर पण्डितजी ने मन्त्र-दीप जलाया और मन्त्र पढ़ा। तुरन्त द्वार खुल गए।

"तुम दोनों अन्दर जाकर पहले दो गठरियाँ लाओ ! पीछे हम लोग जाएँगे।" मुखिया ने पण्डितजी और धोबी से कहा। तुरन्त ये दोनों अन्दर गए। इस बीच बाहर नाई ने मुखिया से कहा-"मालिक ! दोनों के लौटते ही यह दीपक छीन लेना चाहिए हमें।"

"मैं भी यही सोच रहा था। अच्छा! पहले बाहर आने तो दो।" मुखिया ने कहा।

इतने में पण्डितजी और धोबी गठरियाँ लेकर बाहर आए। "ले लो अपना हिस्सा।" कह कर उन्होंने गठरियाँ खोलीं। दोनो लालचियों की आँखें चौंधिया गई। "और नहीं क्या यहाँ ?" दोनों ने एक साथ पूछा।

"है क्यों नहीं ? उन जादू के कल्सों में न जाने, कितना धन भरा पड़ा है।" पण्डितजी बोले।

तब सिर्फ दो ही गठरियाँ लेकर क्यों लौट आए ? ठहरो, जरा हम भी एक बार अन्दर हो आएँ।" मुखिया ने कहा और नाई के साथ अन्दर जाने लगा। वे दोनों अन्दर घुसे ही थे कि वायु का एक प्रबल झोंका झोका आया और पण्डितजी के हाथ का मन्त्रदीप बुझ गया। तुरन्त चट्टान का दरवाजा बन्द हो गया और दोनों दुष्ट सुरङ्ग में बन्दी बन गए। पण्डितजी ने घोवी से कहा-"देखा तुमने ! दुष्टों को भगवान ही दण्ड दे देता है। चलो, लौट चलें। दोनों निश्चित पर लौट गए।

पुराने जमाने में किसी गाँव में करिया डाइन नाम की एक डाइन रहती थी। लोग कहा करते थे कि वह मन्तर-तन्तर करके आदमियों को मेड़-बकरी बना देती है और पका कर खा जाती है।

धीरे-धीरे यह बात एक राक्षस के कानों तक पहुँच गई। उसने सोचा- "हमेशा मनुष्य का मांस खाने वाली इस डाइन का मांस, न जाने और कितना स्वादिष्ट होगा !" यह सोच कर उसने उस डाइन को पकड़ कर पाताल ले जाने और वहाँ फुरसत से उसे चट कर जाने का इरादा किया।

तुरन्त उसने एक सुन्दर राजकुमार का भेष बनाया और करिया डाइन के घर आया। "करिया डाइन ! करिया डाइन ! तुम्हारे बारे में संसार भर में अजीब अजीब बातें फैली हुई है। वाह ! तुम कितनी सुन्दर हो ! मैं तुम्हें अपनी रानी बना लेना चाहता हूँ। बोलो, क्या कहती हो ?" उसने खूँसट डाइन से कहा।

डाइन अपना पोपला मुँह खोल कर "ही ही ही" कर हँसने लगी। "तुमने सोचा तो ठीक। लेकिन पहले बता दो मुझे कन्धे पर बढ़ा कर अपने गाँव ले जा सकोगे ?" उसने राक्षस से पूछा।

"इस में क्या लगा है ? जाओ, मेरे पीठ पर चढ़ जाओ। तुम्हें पल भर में अपने यहाँ ले जाऊँगा।" राक्षस ने जवाब दिया।

"अच्छा, चलो !" करिया डाइन ने कहा। राक्षस ने डाइन को अपने पीठ पर चढ़ा लिया। तीन कदम जाने के बाद उसने जमीन पर लात मारी। तुरन्त जमीन फट गई और पाताल जाने के लिए राह बन गई।

राक्षस नीचे उतरने लगा। वह बरसों दिन-रात चलता ही गया। लेकिन बहुत कोशिश करने पर भी करिया डाइन को

श्री रामपाल

अपने पीठ से न उतार सका। राक्षस पस्त हो गया। वह अब सोचने लगा- "भगवान करे ! किसी तरह यह बला मेरे पीठ से उतर जाय। मैं और कुछ नहीं चाहता।"

अन्त में उसने जाकर राक्षसों के राजा से बिनती की-"देव ! किसी तरह इस दुष्टा को पीठ से हटाने का उपाय बता दीजिए। मै आपका एहसान कभी नहीं भूलूँगा।"

तब राक्षस राज ने सलाह दी-"अरे माई ! इतनी जल्दी हार मान बैठे ! एक डाइन से इतना डरने लगे! सारी जात की नाक का दी तुमने। अच्छा सुनो ! इसे ले जाओ और जहाँ से लाए हो वहीं छोड़ आओ।"

बेचारा राक्षस करिया डाइन से अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए फिर पृथ्वी को लौटने लगा। राह में उसे एक उजड्डु ग्वाला दिखाई दिया। उसने राक्षस को देख कर कहकहे मारते हुए कहा-"बाह भैया ! यह गधे का बोझ कितने दिन से ढो रहे हो ?"

राक्षस चौंक पड़ा। उसने सोचा-"यह तो बड़ा गुरु घन्टाल मालूम होता है। नहीं तो इसे कैसे मालूम हो गया कि मैं इस खूँसट डाइन को बहुत दिन से ढो रहा हूँ।" वह ग्वाले से बोला- "भैया ! मेरी इतनी सी भलाई कर

दो। मैं तुम्हारा एहसान कमी नहीं भूलूँगा।" यह कह कर उसने अपनी आफत ग्वाले से कह दी।

"अरे! इतनी सी बात है। लाओ, उसे उठा कर मेरे पीठ पर रख दो।" ग्वाले ने कहा।

"जान बची भगवान की कृपा से।" राक्षस ने सोचा। उसने किसी तरह करिया डाइन को ग्वाले के पीठ पर चढ़ा दिया और सुख की साँस लेने लगा। ग्वाला डाइन को उठा कर दक्खिन की ओर दौड़ने लगा।

"बेवकूफ ग्वाला आ गया चकमे में। अब डाइन उसका पिण्ड नहीं छोड़ेगी।" राक्षस ने सोचा और ग्वाले की भेड़ों को

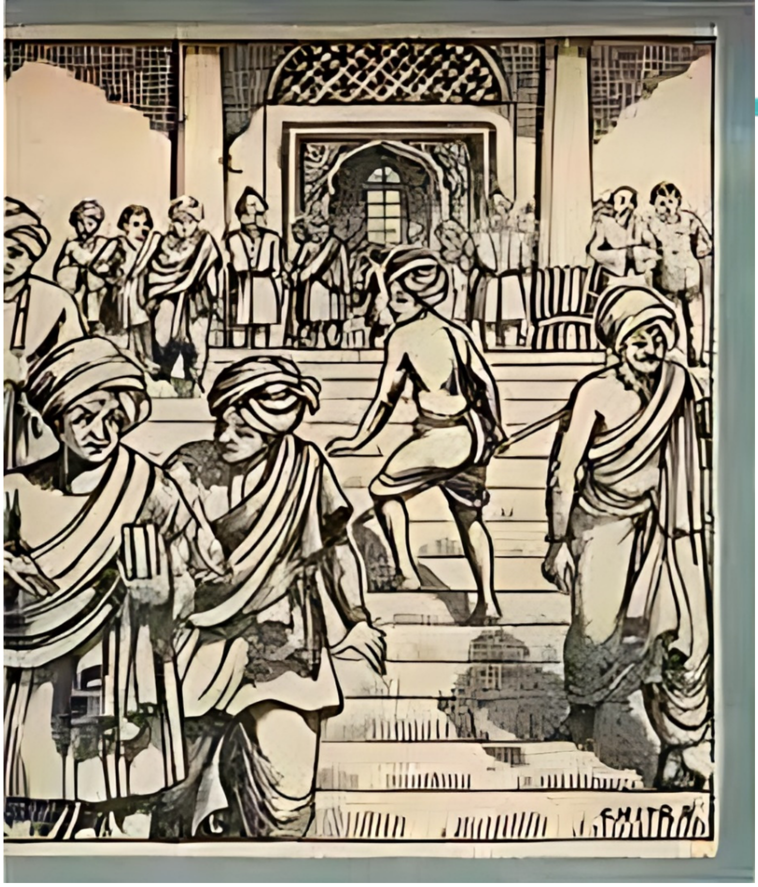

हाँक कर लौटने लगा। लेकिन वह थोड़ी ही दूर गया था कि ग्वाले की पुकार सुनाई दी। "क्यों भैया ! डाइन को मुझे सौंप कर चुपके से भेड़ों को हाँक ले जाना चाहते हो ?" वह हँसते हुए कह रहा था।

राक्षस उसकी बात अनपुनी करके पूछने लगा-"अरे । इतनी जल्दी डाइन से पिण्ड कैसे छूट गया ?" "यह भी कोई मुश्किल काम है ? नजदीक ही एक तालाब है जिसमें अक्सर लोग डूब मरा करते हैं। डाइन को उठा कर उसमें फेंक आया। लेकिन वह थी बड़ी चालाक ! कम्बल पकड़ कर छोड़ती ही न थी। मैंने सोचा-'कम्बल जाय भाड़ में !' उसे कम्बल सहित तालाब में फेंक आया।" ग्वाले ने जवाब दिया।

तब राक्षस ने वाले को बहुत सराह कर कहा-"भैया ! सुनो, मैं कल जाकर भूत बन कर इस देश की राजकुमारी पर सवार हो जाऊँगा। ऐसा टोना करूँगा कि उसका दिमाग ही फिर जाय। तब राजा ढिँढोरा पिटवा देंगे कि जो राजकुमारी को चङ्गी कर देंगे, उन्हें बड़ा भारी ईनाम दिया जाएगा। लेकिन यह किसी से न हो सकेगा। आज से ठीक तीस दिन बाद तुम आकर राजकुमारी के कान में कहना-'अजी ! मैं ग्वाला हूँ।' बस, मैं उसे छोड़ कर चला जाऊँगा और वह चङ्गी हो जाएगी। जरूर ईनाम तुम्हें मिल जाएगा।"

ग्वाला ठीक तीस दिन बाद राजा के किले में गया। जहाँ देखो वहीं राजकुमारी के विचित्र रोग की चर्चा हो रही थी। लोग कहते थे-"बेचारी राजकुमारी पागल हो गई। राजा का ढिँढोरा है कि जो उन्हें चङ्गी कर देगा, उसे आधा राज और राजकुमारी मिल जाएगी।"

जब ग्वाला राज-महल के नजदीक गया तो उसने देखा कि बड़े-बड़े वैद्य-हकीम,

ओझा-मान्त्रिक हार मान कर सर झुका कर लौटे जा रहे हैं।

ग्वाला बड़ी शान से सीधे अन्दर चला गया। राजकुमारी बाल बिखेरे फर्श पर लोट रही थीं और राजा भी वहीं बैठे हुए थे। ग्वाले ने जाकर राजकुमारी के कान में कह दिया- "अजी! मैं ग्वाला हूँ।" तब राक्षस ने जो राजकुमारी पर सवार था, उसे छोड़ दिया। वह जाते वक्त ग्वाले से कह गया-"देखो! इस बार मैंने तुम्हारी लाज रख ली। लेकिन बार बार इस तरह न करना, नहीं तो कच्चा ही चबा जाऊँगा।"

तुरन्त राजकुमारी चंगी हो गईं। उन्होंने ग्वाले को देख कर लाज से सिर झुका लिया। तुरन्त किले में मङ्गल-वाथ बजने लगे और यह शुभ-सनाचार पल में चारों ओर फैल गया। बेवकूफ ग्वाला राजकुमारी का पति और आधे राज का स्वामी बन गया। लेकिन कहानी यहीं खतम नहीं हुई !

* * * *

राक्षस को अब राजकुमारियों पर सवार होने की आदत सी हो गई थी। उसने जाकर पड़ोस की और एक

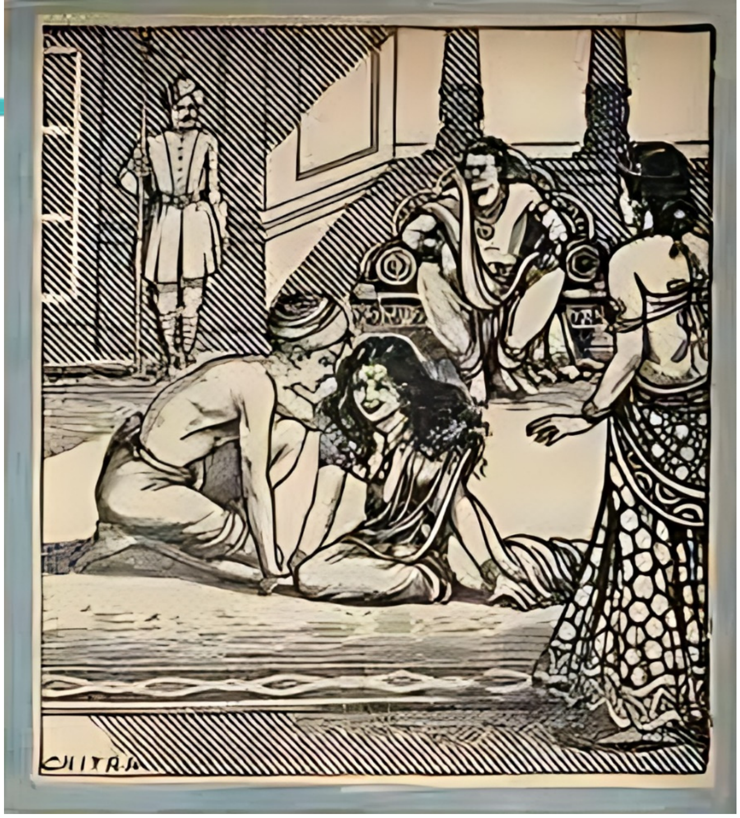

राजकुमारी को पकड़ लिया था और उसे बहुत कष्ट दे रहा था। बेचारी का सिर फिर गया था और वह पागलों की सी बातें करने लगी थी। उस राजा ने अनेकों वैद्य-हकीम और ओझा बुलाए। लेकिन कोई फायदा न हुआ। आखिर जब उसे मालूम हुआ कि ग्वाले ने राजकुमारी को चङ्गी कर दिया तो उसने उसे बुला लाने को दूत भेजा।

जब दूत ने आकर राजा से दामाद को भेजने की विनती की तो बेचारा ग्वाला बहुत घबरा गया। उसे राक्षस की चेतावनी याद आ गई। "जी! मैं वास्तव में मन्तर-तन्तर कुछ नहीं जानता। भगवान की कृपा से किसी तरह राजकुमारी चङ्गी हो गयी।

मैं इस मामले में कुछ नहीं कर सकता। उसने राजा से निवेदन किया।

अब तो राजा बड़े असमञ्जस में पड़ गया। क्योंकि पड़ोसी राजा ने दूत के द्वारा कहला भेजा था कि यदि ग्वाले को तुरन्त नहीं भेजा गया तो वह सेना सहित आकर लड़ाई छेड़ देगा और उसे जबर्दस्ती पकड़ ले जाएगा। आखिर राजा ने ग्वाले से सभी हालत बता दी। अब कोई चारा न रहा। ग्वाले को इस दूसरी राजकुमारी का इलाज करने के लिए जाना ही पड़ा।

ग्वाले ने पड़ोसी राजा के किले में पहुँच कर देखा कि वहाँ बड़ी खलबली मची हुई है। आने-जाने वाले वैद्यों, हकीमों और ओझाओं का ताँता सा बँधा हुआ था। उसे बड़े सम्मान के साथ सीधे राजकुमारी के पास ले जाया गया। ग्वाले ने जाकर चुपके से राजकुमारी के कानों में कहा-"सुनो भैया! तुम ने मेरा बड़ा एहसान किया। इसलिए मैं भी तुम्हारी एक भलाई करने आया हूँ। हमने समझ लिया था कि करिया डाइन मर गई। लेकिन मालूम होता है, वह नहीं मरी। मुझे अभी मालूम हुआ है कि वह तालाब से सही-सलामत ऊपर आ गई और तुम्हें खोजती हुई आ रही है।"

ग्वाले की बात पूरी भी नहीं हुई। करिया डाइन का नाम सुनते ही राक्षस "बाप रे बाप !" कह कर जो भागा तो सीधे पाताल जाकर ही दम लेने लगा। और क्या था ? राक्षस के छोड़ कर जाते ही राजकुमारी चङ्गी हो गई। उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से एक बार ग्वाले की तरफ ताका और लाज से सिर झुका लिया। राजा ने भी वचन के अनुसार राजकुमारी का व्याह वाले से करके उसे आधा राज दे दिया। इस तरह वह ग्वाला अपनी चतुराई के कारण दो राजकुमारियों का पति बन गया।

रङ्गीन चित्र - कथा, चित्र — ३